राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

मिर्ज़ा ग़ालिब

मालिक राम

अनुवादक
श्रीकान्त व्यास

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नई दिल्ली

प्रकाशक सचिव नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली १३
मुद्रक हिंदी प्रिंटिंग प्रेस क्वींस रोड दिल्ली ६

प्रस्तावना

गालिव सम्भवतः अकेले ऐसे उर्दू शायर है जिन्हे हमारे देश के वाहर भी एक हद तक प्रसिद्धि प्राप्त हो सकी है। उन्हे अपने जीवनकाल मे पर्याप्त मान्यता मिली थी लेकिन स्वभावत. वे इससे सन्तुष्ट नही थे और न ही अपने भाग्य से। लेकिन उन्हे साहित्य के क्षेत्र मे अपनी श्रेष्ठता के वारे मे वखूवी मालूम था और इसमे भी उन्हे कभी सन्देह नही रहा कि उनके वारे मे इतिहास का अन्तिम निर्णय क्या होगा। इसी के आधार पर उन्होने भविष्यवाणी की थी कि उनकी मृत्यु के वाद ही लोग उनकी शायरी के उच्च स्तर को समझ सकेगे और उसका सही मूल्याकन कर सकेगे, और इस प्रकार उनका सितारा वुलन्द होता जाएगा। यह भविष्यवाणी कितनी सत्य सिद्ध हुई यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उनकी शताब्दी फरवरी १९६९ मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनायी जा रही है।

नेशनल वुक ट्रस्ट ने अपनी राष्ट्रीय जीवन-चरित माला मे गालिव का नाम सम्मिलित करने का निश्चय किया और श्री मालिक राम से गालिव के जीवन और उनकी शायरी का एक सक्षिप्त परिचय लिखने का अनुरोध किया। इसके परिणामस्वरूप यह पुस्तक प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के दूसरे अध्याय मे गालिव के २०० से अधिक प्रतिनिधि शे'र सकलित हैं। इस प्रकार इस पुस्तक मे उनके उर्दू 'दीवान' का दस प्रतिशत से भी अधिक अश सम्मिलित हो सका हे। शे'रो को विपय के अनुसार वर्गीकृत किया गया है, और पाठको की सुविधा के लिए उर्दू के

विषय-सूची

: १ :

भूमिका

जब काबुल के शाह बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय अधिकांश उत्तर भारत पर इब्राहीम लोदी का राज था। इब्राहीम के ही कुछ असन्तुष्ट दरबारियो ने बाबर को अपनी सहायता के लिए आने और लोदी वश के इस आखिरी बादशाह का तख्ता उलटने के लिए बुलावा भेजा था। भारत के उपजाऊ और सम्पन्न मैदानी इलाको पर बाबर की निगाहे पहले से ही लगी थी, और वह अपने चटियल पहाडी राज की असुविधापूर्ण राजधानी से इधर आने के लिए किसी अनुकूल अवसर की तलाश मे था। जब उसे यह सुखद आमत्रण मिला तो उसने फौरन इसे स्वीकार कर लिया। वह अपने मुट्ठी-भर सैनिको के साथ सीमा पार करके भारत मे घुस आया। इब्राहीम लोदी की सेना के साथ उसकी निर्णायक लडाई पानीपत मे २१ मार्च १५२६ को हुई। इब्राहीम की सेना हार गई और वह खुद भी लडाई मे मारा गया। इस प्रकार पानीपत मे उस दिन भारत मे मुगल साम्राज्य का शिलान्यास हुआ।

पानीपत मे हुई जीत हालाकि निर्णायक थी फिर भी उसे भारत की पराजय नही माना जा सकता। बाबर इसके बाद लगभग चार साल ही जीवित रहा, और उसका अधिकाश समय छोटे-छोटे राजाओ और जागीरदारो से लडने मे ही बीता। जब १५३० मे उसकी मृत्यु हुई और उसका सबसे बडा लडका हुमायू गद्दी पर बैठा तो यह नव-स्थापित साम्राज्य अभी न तो दृढ हो पाया था और न सुरक्षित। हुमायू को लगातार विपरीत परिस्थितियो का सामना करना पडा और अन्त मे उसे इस देश से भागकर ईरान मे शरण लेनी पडी। उसकी अनुपस्थिति मे शेरशाह सूरी ने एक नये राजवश की स्थापना की, जो उसके उत्तराधिकारियो की दुर्बलता और अयोग्यता के

कारण ज्यादा दिन नही टिक सका। इस बीच हुमायू अपने खोये हुए राज्य का वापस लेने के लिए ईरान के शाह से सनिक सहायता प्राप्त करने म सफल हो गया। वह अपनी ईरानी सेना के साथ १५५५ म भारत लौटा। उसने सलीम शाह को जो शेरशाह सूरी के बाद १५४५ म गद्दी पर बठा था बुरी तरह पराजित किया और भारत के राजसिंहासन पर फिर स कब्ज़ा कर लिया। इस बार यह एक स्थायी विजय सिद्ध हुई इस देश म मुगल शासन अगले ३०० वर्षों तक लगातार कायम रहा।

हुमायू के बाद उसका पुत्र अकबर १५५६ म गद्दी पर बठा। वह इंग्लड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम का समकालीन था। य दोनो ही बहुत सफल शासक सिद्ध हुए और दोनो अपनी स्थायी उपलब्धियो के लिए उल्लखनीय है। अकबर का लगभग आधी शताब्दी का शासनकाल भारतीय इतिहास के सबसे शानदार युगो म माना जाता है। भारत न जीवन क सभी क्षत्रो म प्रगति की। देश म शान्ति और समद्धि का वातावरण रहा तथा विदेश मे प्रतिष्ठा और लोकप्रियता की प्राप्ति हुई। आगरा का शाही दरबार ईरान और पश्चिमी एशिया के अन्य देशो के सभी प्रकार के सफलताकामियो—विद्वानो और लखको योद्धाओ और राजनयज्ञो आदि के लिए तीथ बन गया और शीघ्र ही अकबर की प्रसिद्धि यूरोप तक पहुच गइ। इस प्रकार नवागतो का एक सिलसिला सा बन गया जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज के राजनीतिक सामाजिक और सास्कृतिक जीवन म नय रक्त का सचार होता रहा और विकास की गति बराबर बनी रही।

अकबर के बाद साम्राज्य की भौतिक समद्धि अगली तीन पीढ़िया तक लगातार जारी रही। लकिन औरंगजेब क शासनकाल म खासी गड़बडा नजर आन लगी हालाकि कमजोरो के चिह्न बहुत पहल अकबर की मत्यु क शीघ्र बाद उसक लडक जहागीर क शासनकाल म ही प्रकट होन लगे थ। जहागीर शाहजहा या औरंगजेब किसी क भी सिर किसी बडा सनिक सफलता का सेहरा नही बाधा जा सकता। औरंगजेब क शासनकाल म ही साम्राज्य की शक्ति का ह्रास इस हद तक पहुच चुका था कि बाद बादशाह को अपन

जीवन के अतिम बीस वर्ष दक्षिण के युद्ध क्षेत्रो मे बिताने पडे और वहा से वह कभी वापस नही लौट सका। फरवरी १७०७ मे अहमदनगर मे उसकी मृत्यु हो गई। अगले १५० वर्षो मे शाही परिवार का सितारा बराबर डूबता ही चला गया, जबकि अन्त मे १८५७ मे अतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वितीय को अग्रेजो ने गद्दी से उतार दिया और बदी बनाकर रगून भेज दिया। इस देश मे मुगलो की शक्ति को पहली गम्भीर चोट पहुचायी ईरान के बादशाह नादिरशाह ने, जिसने भारत पर आक्रमण किया और यहा की सेनाओ को हराने के बाद १७३९ मे शाही राजधानी पर कब्जा कर लिया और उसे खूब लूटा। इस चोट से देश अभी सभल नही पाया था कि १७६१ मे अहमदशाह अब्दाली अपनी सेनाओ को लेकर चढ आया और उसने भी नादिरशाह की तरह लूटमार की। इसके बाद मुगल राजवश लगभग एक शताब्दी तक और कायम रहा, लेकिन शाही दबदबा कम होता चला गया और अत मे केवल दिल्ली तक सीमित रह गया। धीरे-धीरे, साम्राज्य के सुदूर-स्थित प्रदेश स्थानीय सरदारो की अधीनता मे एक-एक करके अपने को स्वतन्त्र घोषित करने लगे, जबकि इन सरदारो को कभी स्वय बादशाह ने सूबेदार या सेनापति बनाकर वहा भेजा था।

परिवार

दिल्ली-स्थित मुगल दरबार अपने अन्तिम दिनो मे इस स्थिति मे नही रह गया था कि किसी विदेशी को कोई आकर्षक रोज़ी या सम्मान का पद और आश्रय प्रदान कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि समृद्धि के आकाक्षियो और किस्मत आज़मानेवालो का आना-जाना बहुत-कुछ कम हो गया और अन्त मे नाममात्र ही रह गया। अवनति के इस दौर मे हमे भाडे पर काम करनेवाले कुछ ऐसे लोग नजर आते है जो सबसे ज्यादा पैसे देनेवाले की सेवा के लिए या उसके वास्ते लड़ने-मरने को हमेशा तैयार रहते थे। एक ऐसा ही किस्मत आजमानेवाला तुर्क सैनिक था कुकानबेग खा, जो अठारहवी शताब्दी के मध्य मे समरकन्द से भारत आया था। ऐसे सकेत

मिलता है कि वह खासे मलजोलवाला आदमी था और उसका संबंध एक सम्मानित परिवार से था जिसने कभी अच्छे दिन देखे थे। पहले वह पंजाब के गवर्नर मोइनुल्मुल्क के यहां रहा। कुछ समय तक लाहौर में रहने के बाद वह दिल्ली चला आया और जुल्फकारुद्दौला मिर्ज़ा नजफ खां का आश्रित हो गया। उसी की सिफारिश पर वह शाहआलम द्वितीय का नौकर हुआ। बादशाह ने उसे ५० घुड़सवारों का नायक बना दिया और इसके साथ ही उसे पिहासू (ज़िला बुलन्दशहर) की उपजाऊ जागीर भी सौंप दी ताकि वह अपना और अपने सैनिकों का खर्च चला सके। नौकरी की ये शर्तें कोई बहुत आकर्षक नहीं थीं। इसके अलावा उसके जैसे महत्वाकांक्षी आदमी के लिए यहां उन्नति की सम्भावना भी नहीं थी। इसलिए अपनी स्थिति से असंतुष्ट होकर उसने शाही नौकरी छोड़ दी और वह जयपुर के महाराजा की सेना में नौकर हो गया। यह तो पता नहीं कि वह जयपुर की नौकरी में कब तक रहा लेकिन कुछ समय बाद ही हम देखते हैं कि वह आगरा में आ बसा।

कूकानबेग खां का परिवार काफी बड़ा था जिसमें से हम केवल उसके दो पुत्रों के नाम मालूम हैं—नसरुल्लाबेग खां और अब्दुल्लाबेग खां। अपने पिता की तरह उन दोनों ने भी सैनिक का पेशा अपनाया। नसरुल्लाबेग खां ने मराठों की नौकरी कर ली और धीरे-धीरे उन्नति करते हुए वह ग्वालियर के महाराजा के वेतनभोगी एक फ्रांसीसी जनरल पेरों के मातहत आगरा किले का किलेदार बन गया। अब्दुल्लाबेग खां इतना खुशकिस्मत नहीं था। वह पहले लखनऊ गया। यह उस समय की बात है जब आसिफुद्दौला (१७७५-१७९५) नवाब वज़ीर था। स्पष्ट है कि वहां भी उसे जमने का मौका नहीं मिला और जल्दी ही हैदराबाद चले जाना पड़ा जहां उस समय नवाब निज़ामअली खां का राज था। वहां उसे एक छोटा सा ओहदा मिल गया। वह दक्खिन में कई साल रहा। बाद में निज़ाम के दरबारी रईसों के कुछ आपसी झगड़ों के कारण उसकी यह नौकरी भी जाती रही। इसके बाद वह अलवर चला आया और महाराज बख्तावरसिंह (१७९१-१८०३) के मातहत

काम करने लगा। दुर्भाग्यवश, कुछ ही समय बाद एक स्थानीय विद्रोह को दबाने के लिए उसे भेजा गया और वहीं वह मारा गया। ग़ालिब ने अपने एक पत्र मे इन घटनाओं का विवरण दिया है। उन्होंने लिखा है :

"मेरे दादा के इन्तेक़ाल के बाद जो तवाइफ़ुलमुलुक का हंगामा गर्म था वह इलाका (जागीर परगना पिहासू) न रहा। बाप मेरा अब्दुल्लाबेग ख़ानबहादुर लखनऊ जाकर नवाब आसिफ़ुद्दौला का नौकर रहा। बाद चन्द रोज, हैदराबाद जाकर नवाब निज़ामअली खा का नौकर हुआ। ३०० घुड़सवारों की जमीअत मे मुलाज़िम रहा। कई बरस वहा रहा। वह नौकरी एक ख़ाना जंगी के बखेड़े मे जाती रही। वालिद ने घबराकर अलवर को कस्द किया। रावराजा बख़्तावरसिंह का नौकर हुआ, और वहा किसी लड़ाई मे मारा गया।"

अब्दुल्लाबेग ख़ा की शादी मुगल सेना के एक अवकाशप्राप्त सेना-नायक गुलाम हुसैन ख़ा के परिवार मे हुई थी। मृत्यु के समय उनकी तीन सन्ताने थी—एक पुत्री और दो पुत्र। पुत्रो मे से बड़े थे हमारे मशहूर शायर ग़ालिब, जिनका मूल नाम था असदुल्लाबेग ख़ा। उनका जन्म आगरा मे २७ दिसम्बर १७९७ को हुआ था। उनके छोटे भाई यूसुफ़अली ख़ा उनसे दो साल छोटे थे, बहन दोनो से बड़ी थी। अब्दुल्लाबेग ख़ा की मृत्यु के पहले भी परिवार आगरा मे ही रह रहा था क्योंकि अब्दुल्लाबेग ख़ा के घुमक्कड़ जीवन के कारण ये लोग कही भी उनके साथ नही रह सकते थे। इसीलिए ग़ालिब की माता बराबर आगरा मे ही अपने मा-बाप के साथ रही। ग़ालिब की ननिहाल के लोग काफी सम्पन्न थे और उनके पास ख़ासी बड़ी जायदाद थी जिसका कुछ अंश अब भी मौजूद है। १८०२ मे अब्दुल्ला-बेग ख़ा की मृत्यु के बाद जब ग़ालिब मुश्किल से चार वर्ष के थे, उनका परिवार उनके ताऊ नसरुल्लाबेग ख़ा के संरक्षण मे आ गया।

यह वह समय था जब उत्तर भारत मे अंग्रेज़ो की शक्ति बड़ी तेज़ी से बढ रही थी—वे लोग बड़े और छोटे राज्यो और रियासतो को ख़त्म करते जा रहे थे तथा अपने प्रभाव और आधिपत्य का दायरा बढाते चले जा रहे

थे। अंग्रेजों का प्रधान सेनापति लार्ड लेक १८०३ में जब आगरा पहुंचा तो उस समय नसरुल्लाबेग खां वहां के किले के नायक थे। उन्होंने अपने साले नवाब अहमदबख्श खां के कहने पर कोई विरोध नहीं किया और किला लार्ड लेक को सौंप दिया। इस सेवा के बदले उनको अंग्रेजों ने अपने अधीन ४०० घुड़सवारों का नायक नियुक्त कर दिया तथा उनके और उनके सैनिकों के खर्च के लिए १७०० रुपये मासिक का वेतन बांध दिया। बाद में नसरुल्लाबेग खां ने भरतपुर के पास के सांक और सोंसा के दो जिलों पर कब्जा कर लिया जो उस समय इन्दौर राज्य के अन्तर्गत थे। जब लार्ड लेक को इसका पता चला तो उसने खुश होकर ये दोनों जिले नसरुल्लाबेग खां को जीवन भर के लिए इनाम में दे दिए। स्वाभाविक था कि इससे उनके स्वर्गीय भाई के परिवार के लिए जो अब उनका आश्रित था कुछ आराम की जिन्दगी का इन्तजाम हो गया। दुर्भाग्यवश यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। सन १८०६ में एक दिन नसरुल्लाबेग खां जंगल में हाथी पर से गिर पड़े और उन्हें इतनी चोट आई कि कुछ ही दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनकी इस अकाल मृत्यु से गालिब का परिवार दूसरी बार बेसहारा हो गया और उसका कोई संरक्षक नहीं रह गया।

इस समय तक नवाब अहमदबख्श खां फिरोज़पुर झिरका और लोहारू की दो छोटी रियासतों के शासक बन गए थे। इन रियासतों में से पहली उन्हें अंग्रेजों से और दूसरी अलवर के महाराव बख्तावरसिंह से इनाम में मिली थी। नवाब ने स्वर्गीय नसरुल्लाबेग खां के साथ के अपने सम्बन्धों का ख्याल करके इन बच्चों को अपनी देखभाल में रख लिया। उन्होंने लार्ड लेक से कुछ कह-सुनकर स्वर्गीय नसरुल्लाबेग खां के परिवार के भरण-पोषण के लिए १० ००० रुपये वार्षिक की पेंशन भी स्वीकृत करवा ली। लेकिन एक महीने बाद ही उन्होंने न मालूम कैसे एक दूसरा आदेश जारी करवा लिया जिसके अनुसार पेंशन की राशि १० ००० रुपये से घटकर ५ ००० रुपये वार्षिक ही रह गई। यही नहीं उन्होंने पेंशन का बंटवारा भी इस प्रकार स्वीकृत करवाया कि एक किसी ख्वाजा हाजी को २ ०००

रुपये वार्षिक का सबसे बडा हिस्सा मिला, और बाकी का हिस्सा परिवार के शेष छ सदस्यो के नाम तय हुआ। इसमे से गालिब के हिस्से मे कुल ७५० रुपये वार्षिक की मामूली-सी रकम आई।

गालिब की माता अब भी अपने माता-पिता के साथ ही रह रही थी। हमे ज्ञात नही कि उनके पिता की मृत्यु कब हुई। इस्लाम की रिवायतो के अनुसार लडकी को भी उसके पिता की मृत्यु के समय छोडी गई सम्पत्ति मे से अपने भाइयो के साथ हिस्सा मिलता है। हालाकि इस नियम का सर्वत्र पालन नही होता, फिर भी कुछ मुस्लिम परिवारो मे अब भी इसका पालन किया जाता है। इसलिए इस बात की सम्भावना मालूम होती है कि उन्हे अपने पिता गुलामहुसैन खा द्वारा छोडी गई सम्पत्ति मे से अपना हिस्सा मिला होगा और यह काफी मात्रा मे रहा होगा। इसलिए जब तक वे जीवित रही होगी, गालिब को पैसे की तगी महसूस नही हुई होगी।

शिक्षा और आरम्भिक वर्ष

इस्लाम मे आरम्भकाल से ही कुरान समस्त ज्ञान का केन्द्र रहा है। बच्चो के लिए नियत पाठ्यक्रम भी कुरान और अन्य धार्मिक शिक्षाओ को ध्यान मे रखकर तैयार किए जाते थे। विद्यार्थियो को ऐसे ही विषय पढाए जाते थे जो उनके लिए आगे चलकर अपने जीवन मे धर्म की मूलभूत शिक्षाओ की सत्यता और उसकी खूबियो को उजागर करने मे सहायक सिद्ध हो सकते थे। हर गाव और कस्बे मे मस्जिद शिक्षा का केन्द्र होती थी। नमाज पढाने वाला मौलवी अपने खाली समय मे अध्यापक का काम भी करता था। पास-पडोस के बच्चे प्रतिदिन ठीक समय पर मस्जिद मे जमा हो जाते थे और उन्हे मौलवी कुरान तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ पढाता था। कुछ समय बाद, मदरसे भी स्थापित हुए, वहा अन्य विकसित और विशिष्ट विषय भी पढाए जाने लगे। सभी मुस्लिम देशो मे शिक्षा की यही प्रणाली प्रचलित थी।

जब मुसलमान भारत आए तो वे यह शिक्षा प्रणाली भी अपने साथ

लाए। यहां भी मोहल्ले की मस्जिद ही मुख्यरूप से मदरसे का काम देती थी। बच्चे मस्जिद में जमा हो जाते थे और मौलवी साहब ही उन्हें समस्त विषयों की शिक्षा देकर एकमात्र मार्गदर्शक होते थे। इन प्राथमिक मदरसों को मकतब कहा जाता था। यह प्रथा अब भी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई है और आज भी छोटे छोटे गांवों में जारी है।

बाद में मुस्लिम समाज का अपेक्षाकृत धनी और प्रभावशाली वर्ग भी ज्ञान के प्रसार में सहायक हुआ। उदाहरणार्थ यदि किसी धनी आदमी का लड़का जब मदरसे जाने की उम्र का हो जाता था तो उसका पिता उसे मकतब में नहीं भेजता था क्योंकि वह इसे अपनी शान और इज्जत के खिलाफ समझता था कि उसका लड़का मस्जिद में नगर के दूसरे मामूली लड़कों के साथ बैठकर पढ़े। ऐसी स्थिति से बचने के लिए वह किसी खास मौलवी को घर आकर अपने लड़के को पढ़ाने के लिए तय कर लेता था। धीरे धीरे उसके मित्रों और उसके जैसी सामाजिक स्थिति के दूसरे लोगों के बच्चे भी पढ़ने के लिए उसके घर जमा होने लगते थे और इस तरह से एक छोटा सा स्कूल कायम हो जाता था। साधारण कोटि के स्कूल बहुत कम थे और जो थे भी वे आम तौर से या तो सरकारी सहायता से चलते थे या किसी धार्मिक वक्फ द्वारा चलाए जाते थे। कभी कभी कोई विद्वान या मौलवी अपने घर पर स्कूल खोल लेता था। वहां वह स्वयं अपने कुछ पढ़े लिखे दोस्तों की सहायता से अध्यापन का काम करता था और ऐसे छात्रों को ज्ञान की शिक्षा देता था जिनके माता पिता उस पर विश्वास करके उसके यहां उन्हें पढ़ने के लिए भेज देते थे।

ग़ालिब की शिक्षा दीक्षा के बारे में हमारा ज्ञान सीमित है। हम इतना मालूम है कि उस समय मुहम्मद मुअज़्ज़म नामक एक प्रसिद्ध विद्वान ने आगरा में एक मदरसा चला रखा था। ग़ालिब को भी इस मदरसे में पढ़ने भेजा गया। उन दिनों फारसी ही दरबारी भाषा तथा पत्र व्यवहार और साहित्यिक गतिविधि का आम माध्यम थी। इसलिए सभी पाठ्य पुस्तकों का फारसी में होना स्वाभाविक था। ग़ालिब ने भी अपने स्कूली दिनों में

दिल्ली ले आया था। आगरा इसके बाद भी साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण नगर बना रहा। लेकिन वह अब दिल्ली से मुकाबला नहीं कर सकता था। इसलिए बहुत सम्भव है कि दिल्ली की केन्द्रीय स्थिति ने गालिब को आकर्षित किया और उन्होंने इसी नगर में स्थायी रूप से बस जाने का निर्णय कर लिया हो। परन्तु इसके अलावा एक और कारण भी हो सकता है। अगस्त १८१० में जब कि उनकी आयु १३ वर्ष की थी उनका विवाह फिरोज़पुर झिरका और लोहारू के नवाब अहमदबख्श खां के छोटे भाई इलाहीबख्श खां की लड़की के साथ हुआ था। ये लोग दिल्ली में रहते थे और सम्भव है कि उन्होंने गालिब को दिल्ली आने और यहां बसने के लिए राज़ी किया हो।

लोहारू के शासक वंश की स्थापना नवाब अहमदबख्श खां ने की थी। ऐसे संकेत मिलते हैं कि नवाब अहमदबख्श खां के पिता मिर्ज़ा आरिफ जान अपने दो भाइयों के साथ १८ वीं शताब्दी के मध्य में उसी समय भारत आए थे, जब गालिब के पितामह कुकानबेग खां मध्य एशिया से यहां आए थे। हम पहले ही लिख चुके हैं कि नवाब अहमदबख्श की बहन गालिब के ताऊ नसरुल्लाबेग खां से ब्याही गई थी। इससे यह भी पता लगता है कि सम्भवतः दोनों परिवारों में घनिष्ठ सम्पर्क रहा होगा जिसको इन्होंने वैवाहिक सम्बन्ध के माध्यम से दृढ़ करने का निश्चय किया होगा।

प्रारम्भ में अहमदबख्श खां बड़े पैमाने पर घोड़ों का व्यवसाय करते थे। कुछ दिनों बाद वे ग्वालियर के महाराजा के सम्पर्क में आए और उन्होंने अपना यह व्यवसाय छोड़ दिया। फिर भी वे अधिक दिनों तक महाराजा के साथ नहीं रहे और अलवर चले गए। बहुत जल्दी ही वे अलवर के शासक के विश्वासपात्र बन गए। वहां वे उन सेनाओं के सेनापति नियुक्त किए गए जो मराठों के विरुद्ध लार्ड लेक के अभियान में सहायतार्थ भेजी गई थीं। अपनी वीरता और सूक्ष्म बुद्धि के कारण वे लार्ड लेक के इतने महत्त्वपूर्ण सहायक सिद्ध हुए कि वह भी उन पर पूरा भरोसा करने लगा। यहां तक कि जब भी कभी वह भारतीय राजाओं और उनके

राज्यो के वारे मे कोई निर्णय करता था तो अहमदवख्श खा से परामर्श लिए विना नही करता था। जव १८०३ मे लॉर्ड लेक ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के विस्तृत भूभाग पर कब्जा किया तो उसने फिरोज़पुर झिरका, पलवल, होडाल आदि के जिले अहमदवख्श खा को इनाम मे दे दिए। इस अवसर पर वुलाए गए विशेप दरवार मे अलवर के महाराव भी उपस्थित थे और उन्होने भी अहमदवख्श खा की सेवाओ के उपलक्ष मे उन्हे लोहारू की रियासत इनाम मे दे दी। इस प्रकार अहमदवख्श खा फिरोजपुर झिरका और लोहारू के प्रथम शासक वने।

नवाव अहमदवख्श खा की राजधानी फिरोजपुर मे थी, लेकिन वे अपना अधिकाश समय दिल्ली मे ही विताते थे। दिल्ली को अग्रेजो ने उत्तरी इलाको के लिए अपना प्रशासनिक केन्द्र वना रखा था। नवाव का छोटा भाई इलाहीवख्श खा दिल्ली का स्थायी निवासी था। इलाहीवख्श खा एक जाने-माने शायर तो थे ही, धार्मिक क्षेत्रो मे भी उसकी अच्छी खासी पहुच थी। वह 'मअरूफ' के उपनाम से उर्दू शायरी करता था।

उर्दू भापा

मुसलमानो और इस देश के निवासियो के वीच के गहरे सम्वन्धो के कारण उर्दू के विकास को वडा प्रोत्साहन मिला। किसी भी भापा को अपना अतिम रूप प्राप्त करने के लिए पहले विकास की कई मजिलो से गुजरना पडता है। यह प्रक्रिया उत्तर भारत मे एक लम्वे समय मे जारी थी और अव ऐमी स्थिति मे पहुच गई थी कि एक नई भापा का आविर्भाव अवश्य-भावी हो गया। यह एक सयोग ही था कि ऐसे अवसर पर मुसलमान मच पर आए। वे अपने साथ फारसी भापा लाए, जो आर्य परिवार की ही एक भापा थी और जिसके पीछे वडी सपन्न और महान साहित्यिक परम्परा थी और साथ ही जिसे विजेताओ की भापा होने का अतिरिक्त गौरव भी प्राप्त था। स्वभावत फारसी को दरवारी भापा का पद प्राप्त हो गया और वह धीरे-धीरे शिक्षित वर्गो तक फैलने लगी, क्योकि उन्होने अपने नये

नामकों को कृपा और नौकरी प्राप्त करने के उद्देश्य से इसे ज़ोर शोर से सीखना शुरू कर दिया। भाषा के क्षेत्र में काफी लम्बे समय से जो उहापोह चल रहा था उसने अब फारसी के प्रभाव और आघात से एक नई भाषा को जन्म दिया जो कुछ समय बाद उर्दू के नाम से जानी जाने लगी। इस नई भाषा का आविर्भाव तो होना ही था क्योंकि इसके जन्म की प्रक्रिया पूरी हो चुकी थी। केवल एक चिनगारी की जरूरत थी और वह उन मुसलमानों के जरिये मिल गई जो पूरे दल बल के साथ उत्तर पश्चिमी सीमांत से प्रविष्ट हुए। यह नई भाषा अपने शब्द भण्डार मुहावरों की रंगत और व्याकरण—प्रत्येक दृष्टि से मूलतः भारतीय थी। इसकी समस्त क्रियाएं भारतीय स्रोतों से उद्भूत थीं। मुसलमानों का योगदान इसकी लिपि तथा फारसी शब्दों की थोड़ी सी संख्या और कुछ ईरानी विचारों और मुहावरों तक ही सीमित था।

आरम्भ में इस भाषा का प्रयोग मुख्यरूप से मुस्लिम सत्ता द्वारा किए जाने वाले धार्मिक प्रवचनों और प्रचार तक सीमित रहा। उर्दू की आरम्भिक गद्य और पद्य की रचनाएं नैतिक और आचारशास्त्रीय भावनाओं से भरी हैं। चूंकि अधिकांश लेखकगण फारसी के भी पंडित थे इसलिए वे फारसी विचारों और विषयवस्तु का बहुत अधिक प्रयोग करते थे। समय के साथ इस भाषा ने अधिक स्पष्टता प्राप्त की तथा टकसाली फारसी से काफी मात्रा में उधार लेने के कारण इसे अधिक व्यापक आधार भी मिला। इतना होने पर भी यह बिल्कुल कृत्रिम ही थी क्योंकि भारत के वे शायर जो फारसी प्रयोगों और उपमाओं का इस्तेमाल कर रहे थे कभी ईरान नहीं गए थे और उनकी सारी जानकारी फारसी के शास्त्रीय ग्रन्थों पर ही आधारित था। इस प्रकार उनकी शायरी शुद्ध कल्पना और कृत्रिमता से ही उत्पन्न थी तथा मीर और दर्द जैसे कुछ शायरों को छोड़कर उर्दू के उत्तरोत्तर शायरों ने मौलिकता और नये चिन्तन के अभाव में इसी प्रकार लिखना जारी रखा।

एक शायर के रूप मे शुरूआत

गालिब जब आगरा मे मदरसे मे ही पढ रहे थे तभी से उन्होने शायरी करना शुरू कर दिया था। शुरू मे वे भी फारसी मे ही लिखते रहे, लेकिन जल्दी ही उन्होने उर्दू को अपना लिया और फिर सिर्फ उर्दू मे ही लिखा। शिक्षित वर्ग मे अब उर्दू का प्रभाव और लोकप्रियता बढती जा रही थी। जैसा कि हम देख चुके हैं, गालिब की आरभिक शिक्षा-दीक्षा अधिकांशत क्लासिकी फारसी मे हुई थी। अब्दुस्समद साहब के सपर्क ने उन्हे फारसी का विद्यार्थी और प्रेमी बना दिया था। बचपन से ही वे फारसी के शौकत बुखारी, असीर और बेदिल जैसे शायरो के प्रति बहुत आकर्पित थे। गालिब ने उर्दू मे उनका अनुकरण आरम्भ किया। लेकिन उर्दू न सिर्फ एक नई भापा थी, बल्कि अभी उसमे ऐसे प्रभावकारी शब्द-भडार और पदविन्यास का भी अभाव था, जो उनके विचारो के अनुकूल होता। यह स्थिति विशेप रूप से उभर कर इसलिए भी सामने आती थी कि वे तब इन फारसी शायरो की शायरी से, खासतौर से बेदिल की शायरी से, प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे और बेदिल विपय और शैली दोनो की ही दृष्टि से फारसी के शायद सबसे कठिन और मुश्किल से पकड मे आने वाले शायर है। इसका परिणाम बहुत सुखद नही हुआ। गालिब की आरभिक शायरी अधिकाशत ऐसी भापा मे बाधी गई है, जो यहा-वहा एकाध शब्द को छोडकर पूरी फारसी ही है। कई जगह तो ऐसा हुआ है कि किसी बहुत ही सामान्य और महत्व-हीन विचार को ऐसी उलझी हुई और चक्करदार शैली मे प्रभिव्यक्त किया गया है कि उसका कोई अर्थ ही नही निकलता। स्वाभाविक था कि इससे उनके समकालीनो ने उनकी बडी प्रतिकूल आलोचना की और उनकी रचनाओ को अर्थहीन घोपित कर दिया। यह आरोप काफी हद तक सही है। हमे उनकी जो आरम्भिक रचनाए प्राप्त हो सकी है, उनमे से अधिकाश को समझ पाना कठिन है और उन्हे पढते समय कई बार तो ऐसा लगता है कि जैसे खोदा पहाड और निकला चूहा।

लेकिन, सौभाग्य से, यह विरोध हमारे नौजवान शायर के जोश को

ठंडा कर पाने में सफल नहीं हो सका। वे बिना निराश हुए निर्भयतापूर्वक अपनी उसी कठिन शैली में शायरी करते रहे। यदि कुछ लोग उनके विरोधी और आलोचक थे तो कुछ लोग ऐसे भी थे जो उनकी मौलिकता और उनके नये प्रयोगों के प्रशंसक थे। उनके ऐसे ही प्रशंसक थे नवाब हुसामुद्दौला जो बड़े सज्जन पुरुष और सुकवि भी शायर थे। एक बार जब वे लखनऊ गए तो ग़ालिब की लिखी हुई कुछ उर्दू गज़लें महाकवि मीर को दिखाने के लिए अपने साथ लेते गए। मीर तब बहुत बूढ़े हो चुके थे और आमतौर से घर पर ही रहते थे। ग़ालिब की गज़लें देखकर उन्होंने व्यंग्यपूर्वक कहा कि अगर इस लड़के को रास्ता दिखाने के लिए कोई योग्य गुरु मिल जाए तो यह बहुत बड़ा कवि बन सकता है वरना यह इसी तरह की निरर्थक बकवास लिखता रहेगा।

यह योग्य गुरु उनकी अपनी सामान्य बुद्धि अथवा उन कुछ सच्चे मित्रों के अलावा और कौन हो सकता था जो जब भी कभी वे गलत रास्ते पर भटकते तो उन्हें सही रास्ता दिखाने का प्रयास करते। वे काफी मात्रा में लिखते थे, और मीर की कही हुई बात से यह सिद्ध होता है कि उन्हें बहुत छोटी आयु में ही पर्याप्त सफलता मिली थी। हम जानते हैं कि मीर का देहान्त २० सितम्बर १८१० को हुआ था जब ग़ालिब अभी पूरे तेरह साल के भी नहीं हुए थे। और हम यह भी जानते हैं कि ग़ालिब ने दस या ग्यारह साल की छोटी उम्र में ही शायरी करना शुरू कर दिया था। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि जब उनकी गज़लें मीर को दिखाई गई थीं तब उन्हें लिखते हुए दो या तीन साल हो चुके थे। उर्दू साहित्य में और विशेष रूप से उर्दू काव्य में मीर का स्थान अद्वितीय है। यह एक माना हुआ तथ्य है कि गज़लगोई में वे अपना सानी स्वयं आप ही हैं और उनके बाद होने वाले सभी उस्तादों ने उनको एक लासानी शायर माना है। सबसे पहले तो यह बात ही काफ़ी महत्त्वपूर्ण है कि किसी ने ग़ालिब की गज़लें मीर को दिखाने की हिम्मत की। क्योंकि मीर अपने समकालीनों से कितनी नफ़रत करते थे यह किसी से छिपा नहीं है। वे अकेले शायर हैं जिन्होंने शायर

ो कभी किसी घटिया शायर या उसकी शायरी की परवाह की हो। नवाव
मामुद्दौला खुद भी मीर के शार्गिद थे। मीर के शौक और मिजाज को
भला उनसे अधिक और कौन जान सकता था। गालिव की गजलों को
लेकर उनका मीर के पास जाना इस वात का प्रमाण है कि न सिर्फ वे खुद
भी गालिव की प्रतिभा के प्रशसक थे, वल्कि उन्हे इसका भी विश्वास था
कि मीर उनका कैसा स्वागत करेंगे। और फिर, मीर की टिप्पणी भी उनके
अपने खास अन्दाज मे ही थी—उनके द्वारा किया गया गालिव का ठीक-
ठीक मूल्याकन उनकी सूक्ष्म समीक्षा-बुद्धि का ही प्रमाण है।

उर्दू काव्य मे 'उस्ताद' और 'शागिद' की परम्परा ईरान से आई।
जब कोई नवयुवक लिखना आरम्भ करता था तो वह मार्ग-दर्शन के लिए
आमतौर मे किसी जाने-माने शायर के पास जाता था। वह जो कुछ लिखता
था, उसे उस वडे शायर को दिखाया करता था, और उस्ताद न केवल
उसकी रचनाओ को ठीक कर देता था, वल्कि उसे जवान की नफासत और
शायरी की वारीकिया समझाता था और काव्य-शास्त्र की शिक्षा भी देता
था। इस परम्परा की जडें इतनी मजवूत हो चुकी थी कि यह लगभग अस-
म्भव था कि किसी शायर का कोई उस्ताद न हो। प्राय ऐसा होता था कि
उस्ताद जब तक जीवित रहता था, तब तक शागिर्द उससे अपनी रचनाओ
पर इसलाह लेना जारी रखता था। लेकिन इस परम्परागत अर्थ मे
गालिव का कभी कोई उस्ताद नही रहा। हमे ज्ञात नहीं कि उन्होने अपने
आरम्भिक दिनो मे कभी किसी से इसलाह ली या नहीं। लेकिन हमे इतना
जरूर मालूम है कि अपने वाद के दिनो मे वे कहा करते थे कि शायरी का
फन मुझे खुदा के रहम से मिला है। इस प्रकार मीर की भविष्यवाणी
अगत सत्य निकली। अपनी निजी सामान्य बुद्धि के अलावा गालिव का
कभी कोई उस्ताद नही रहा, और इतने पर भी वे समय आने पर एक
महान् शायर वन सके।

वहुत सम्भव है कि दिल्ली आने के तुरन्त वाद वे अपनी-पत्नी के परि-
वार के साथ ही रहे हो। फारसी मे लिखे उनके एक पत्र से ज्ञात होता है

कि कुछ समय बाद उन्होंने एक मकान खरीद लिया था और उसी में रहने लगे थे। हम यह नहीं जानते कि वे अपने ससुर इलाहीबख्श खां के यहां कितने समय तक रहे। लेकिन इतना तय है कि इससे उन्हें बड़ा लाभ हुआ।

उन दिनों धनी और पढ़े लिखे लोगों के घर यूरोप के अमीरों के सैलों जैसे हुआ करते थे जहां विद्वानों, कवियों और कलाकारों का जमघट लगा रहता था। मेज़बान अपने मेहमानों की आवभगत करता था। हर तरह से उनका ध्यान रखता था और उनकी हित चिंता भी करता था। अपनी नौजवानी के उन दिनों में ग़ालिब का दिल्ली में रहना और ऐसे जाने माने और प्रभावशाली परिवार के साथ उनका घनिष्ठ सम्पर्क शीघ्र ही दिल्ली के उच्चवर्गीय समाज में उनका परिचय बढ़ाने में सहायक हुआ। ये सम्पर्क और सम्बन्ध उनके लिए बड़े लाभप्रद सिद्ध हुए। इस समय जिन लोगों से उनकी जान-पहचान हुई उनमें विद्वान और कवि, राजनीतिज्ञ और धर्मशास्त्री, मत-प्रचारक और राजनेता सभी तरह के लोग सम्मिलित थे। ये लोग आगे चलकर जीवन के अच्छे और बुरे दिनों में उनके बड़े काम आए और मीर-अमीर उनकी सहायता करते रहे।

पेंशन का झगड़ा

अब ग़ालिब जवान हो गए थे और उन्हें अपने परिवार का भरण-पोषण भी करना था। तब तक वे आगरा में थे। उनकी माता उनकी देखभाल करती थी और हो सकता है कि ननिहाल वाले आगे पर भी उन्होंने ग़ालिब की सहायता करना जारी रखा था। नवाब अहमदबख्श खां भी जब उन्हें ज़रूरत होती थी उनकी सहायता करते थे। लेकिन यह सब कुछ अनिश्चित सा था—उनकी स्थायी आय तो केवल ७५० रुपये वार्षिक की रकम ही थी जो उन्हें उनके चाचा नसरुल्ला बेग खां की मृत्यु के बाद अंग्रेज़ों के द्वारा बांधी गई १०,००० रुपये वार्षिक की पारिवारिक पेंशन में से उनके हिस्से के रूप में मिलता था। लेकिन परिस्थितियों का बिगड़ना और अधिक दूर नहीं लगा।

नवाब अहमदबख्श खा के तीन लडके थे उनमे से सबसे बडे लडके शम्सुद्दीन अहमदखा ने किसी बात पर अपने परिवार मे झगडा कर लिया। वह परिवार के सभी लोगो से नफरत करने लगा। चूकि वह नवाब का वास्तविक उत्तराधिकारी था इसलिए नवाब को यह आशका हुई कि उनकी मृत्यु के बाद शक्ति और प्रभाव प्राप्त करके वह अपने दोनो छोटे भाइयो को सतायेगा—यह सोचकर कि इस प्रकार की स्थिति पैदा न हो, तथा अग्रेजो और उनके अपने परिवार को भी किसी प्रकार के विवाद का अवसर प्राप्त न हो सके, उन्होने १८२६ मे गद्दी छोड दी और इस शर्त के साथ शम्सुद्दीन अहमद खा को फिरोज़पुर भिरका और लोहारू का शासक बना दिया कि लोहारू से होने वाली सारी आय को दोनो छोटे भाइयो मे बाट दिया जाएगा। इस व्यवस्था का गालिब की अपनी स्थिति पर निर्णायक प्रभाव पडा। सन् १८०६ की व्यवस्था के अनुसार उन्हे और उनके परिवार को ५,००० रुपये की जो वार्षिक पेशन मिलती थी, वह फिरोजपुर भिरका और लोहारू की दोनो रियासतो की आय से प्राप्त होती थी। अब शम्सुद्दीन अहमद खा मालिक बन गया था और अपने दोनो छोटे भाइयो को फूटी आख से देखना भी पसन्द नही करता था, और चूकि गालिब उनके घनिष्ठ मित्र और हितचिंतक थे, इसलिए वह गालिब के भी विरुद्ध हो गया। गालिब को उनका हिस्सा समय पर न मिल सके, इस उद्देश्य से उसने हर तरह की बाधाए उत्पन्न कर दी यहा तक कि अत मे उसने उनका हिस्सा देना ही बन्द कर दिया।

एक प्रेम-प्रसग

इसी समय के आसपास हमे गालिब के एक प्रेम-प्रसग का पता चलता है, जिसने उनके मन पर एक स्थायी प्रभाव छोडा। वे नौजवान थे, २५ वर्ष से अधिक उनकी आयु नही थी, इसके अलावा वे स्वस्थ और सुन्दर थे, और खासी अच्छी आर्थिक हालत मे रह रहे थे। जिस समाज मे वे रहते और उठते-बैठते थे, उसमे रखैल या उपपत्नी रखना बुरा नही माना जाता

था उल्टे काफी हद तक इसे उस ज़माने में प्रतिष्ठा का एक प्रतीक ही समझा जाता था। हम देखते है कि उस समय के पढ़े लिखे लोग विद्वान राजनेता धर्मशास्त्री और रईस आदि सभी अपने परिवार के अलावा स्थायी रूप से रखैलें पालते थे और नाचने गानेवालियों से सम्बन्ध रखते थे। किसी पतनोन्मुख समाज में लोगों की नैतिक स्थिति प्रायः कमजोर हो जाती है और इसके फलस्वरूप वह समाज लोगों को आमतौर से कुछ छूट दे देता है। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ से दिल्ली स्थित केन्द्रीय सरकार की स्थिति धीरे धीरे क्षीण होती जा रही थी। मुगलशाही वंश के बाद के बादशाहों को जो भी कुछ प्रतिष्ठा और प्रभाव प्राप्त था वह उनके पूर्वजों की प्रसिद्धि और गौरव के कारण ही प्राप्त था उनके अपने कारण नहीं। औरंगजेब के ज़माने तक जो भी लोग राजसिंहासन के उत्तराधिकारी बनते गए वे आमतौर से दृढ व्यक्ति और अच्छे प्रशासक थे उनमें पर्याप्त बौद्धिक क्षमता थी और वे मुख्य रूप से सक्रिय कार्य करने वाले व्यक्ति थे। उनमें से प्रत्येक आवश्यकता पड़ने पर परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो जाता था। परिणामस्वरूप साम्राज्य न केवल भौगोलिक दृष्टि से विस्तृत हुआ था बल्कि शक्ति और समृद्धि की दृष्टि से भी दृढ और सुगठित था। सरकारी खज़ाने में पर्याप्त धन होता था तथा सेना अच्छी तरह से प्रशिक्षित और पूर्ण सन्तुष्ट होती थी। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उस विस्तृत साम्राज्य के विभिन्न भागों ने एक एक करके केन्द्रीय सरकार का जुआ उतार फेंका और राजधानी में स्थित दरबारी लोग बादशाह से मुनाफे और ताकत की स्थिति प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे के खिलाफ तरह-तरह के षड्यन्त्र किया करते थे। विभिन्न गुटों के इस प्रकार लड़ने झगड़ने रहने के कारण चारों तरफ अराजकता का वातावरण फैला हुआ था। हर आदमी के पास काफी मात्रा में फालतू समय होता था और वह यह नहीं सोच पाता था कि इसका किस प्रकार ढंग से उपयोग किया जाए। राजनीतिज्ञों के पास शक्ति थी और धर्म और नैतिकता की ओर से लोगों ने मुंह मोड़ लिया था। कुछ लोग ऐसे भी थे जो इस स्थिति के विरुद्ध आवाज़ उठाते थे। लेकिन उनकी कोई

नही सुनता था। ऐसी स्थिति मे हर कोई शराब, जुए और नाचने-गानेवालियो की संगत मे अपना गम गलत करना चाहता था।

हमे यह ज्ञात नही कि गालिब को जिस स्त्री से प्रेम हो गया था, वह किस वर्ग की थी। बहुत दिनो बाद लिखे गए अपने एक पत्र मे उन्होने स्पष्ट रूप से इस मामले का उल्लेख किया है। उन्होने उसको 'डोमनी' कहा है, जिसका अर्थ है—नाचने-गानेवाली। यदि हमारा यह अनुमान गलत नही है तो ऐसा लगता है कि वह स्त्री जवानी मे ही मर गई थी, क्योकि गालिब की शुरू की शायरी मे एक 'मरसिया' है, जो सभवत उसकी मृत्यु के शोक मे लिखा गया था। 'मरसिया' इस प्रकार है .

दर्द से मेरे है तुझको बेकरारी हाय हाय
क्या हुई जालिम तिरी गफलत शिआरी[1] हाय हाय
तेरे दिल मे गर न था आशोबे-गम[2] का हौसला
तूने फिर क्यो की थी मेरी गमगुसारी[3] हाय हाय
क्यो मिरी गमख्वारगी का तुझको आया था खयाल
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्तदारी हाय हाय
उम्र भर का तूने पैमाने-वफा[4] बाधा तो क्या
उम्र की भी तो नही है पायदारी हाय हाय
जहर लगती है मुझे आब-ओ-हवाए-जिन्दगी
यानी तुझसे थी उसे नासाजगारी[5] हाय हाय
गुलफिशानी हाय नाजे-जल्वा[6] को क्या हो गया
खाक पर होती है तेरी लालाकारी[7] हाय हाय
शर्मे-रुस्वाई[8] से जा छुपना नकाबे-खाक[9] मे
खत्म है उल्फत की तुझ पर परदादारी हाय हाय

---

१ असावधानी का आचरण, २ दुःख की आकुलता सहन करने की शक्ति, ३ दुःख मे सम्मिलित होना, ४. प्रेम के निर्वाह का वचन, ५ प्रतिकूलता, ६ गर्वित सौन्दर्य की अठखेलियो की पुष्प-वर्षा, ७ फूल-पत्तो का शृगार, ८ बदनामी की शर्म ९ मिट्टी का पर्दा।

ख़ाक में नामूसे पैमाने मुहब्बत[1] मिल गई
उठ गई दुनिया से राहो रस्मे यारी[2] हाय हाय
हाय ही तेग़ आज़मा का काम से जाता रहा
दिल पे इक लगने न पाया ज़ख़्मे-कारी[3] हाय हाय
किस तरह काटे कोई शबहाए तारे बरशगाल[4]
है नज़र ख़ूकर्दए अख़्तर शुमारी[5] हाय हाय
गोश महजूरे पयामो चश्म महरूमे जमाल[6]
एक दिल तिस पर यह ना उम्मीदवारी[7] हाय हाय
इश्क ने पकड़ा न था ग़ालिब अभी वहशत का रंग
रह गया था दिल में जो कुछ ज़ौक़े ख़्वारी हाय हाय

ऐसा लगता है कि वह किसी अच्छे ख़ानदान की थी क्योंकि इस मरसिये में ऐसा संकेत है कि उसने इस डर से कि उनका मामला उसके घर वालों तथा आम लोगों की नज़रों में एक वितण्डा बन रहा है, सम्भवतः आत्महत्या कर ली थी। अगर वह कोई मामूली वेश्या होती तो ऐसे किसी वितण्डे या अपमान का सवाल ही नहीं उठता जिससे उसे अपने हाथों अपनी जान लेनी पड़ती। ग़ालिब के युवा हृदय पर इस आरम्भिक प्रेम सम्बन्ध ने एक स्थायी प्रभाव छोड़ दिया था। उनके ज़माने की सामाजिक स्थिति में यह सम्भव है कि उनके जीवन में ऐसे भावुक लगाव और भी हुए हों, लेकिन उनके बारे में हम निश्चित रूप से कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है।

अपने समय की ऐसी सामाजिक अव्यवस्था के प्रभाव से ग़ालिब भी बच नहीं सके। उन्होंने शराब पीना शुरू कर दिया। कभी कभी जुआ भी खेलते थे। इस प्रकार की आदतों का निर्वाह पर्याप्त और नियमित आय के अभाव में सम्भव नहीं है। दुर्भाग्यवश ग़ालिब की आय ऐसी थी ही नहीं। जब तक आगरा में उनकी माता जीवित रहीं तब तक हम

---

१ प्रेम के वचन का आदर २ मित्रता की रीति ३ गहरा घाव ४ वर्षा काल की अंधेरी रातें ५ तारे गिनने की अभ्यस्त ६ कान सन्देश से और आँख रूप से वंचित हैं, ७ निराश होने की अभिरुचि।

उम्मीद कर सकते है कि वे उनके लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था करती ही रही होगी। नवाब अहमदबख्श खा ने भी अपने पारिवारिक सबधो और नैतिक दायित्व के विचार से उनकी काफी सहायता की। नवाब साहब के गद्दी छोडने के बाद स्थिति बहुत कठिन हो गई। गालिब की आर्थिक हालत तेजी से खराब होने लगी और उन पर कर्ज का भार बढता चला गया। ऐसी स्थिति मे हमेशा ही आदमी कोई-न-कोई बहाना ढूढ लेता है।

पेशन का मामला

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गालिब के ताऊ नसरुल्लाबेग खा की मृत्यु के बाद १८०६ मे लॉर्ड लेक ने जो पहला आदेश जारी किया था, वह शोक-सतप्त परिवार के लिए १०,००० रुपये वार्षिक पेन्शन के लिए था। बाद मे नवाब अहमदबख्श खा ने किसी प्रकार इस आदेश मे सशोधन करवा दिया, जिससे यह रकम आधी रह गई और उन्होने पेशन की रकम के हिस्सेदारो मे एक किसी ख्वाजा हाजी का नाम भी जुडवा दिया था। गालिब को इस दूसरे आदेश की जानकारी नही थी। उनका ख्याल था कि पेन्शन १०,००० रुपये वार्षिक की ही है। अब जबकि उनकी आर्थिक हालत मुश्किल हो गई तो उन्हे अचानक याद आया कि इतने सालो से उनके और उनके परिवार के साथ अन्याय किया जा रहा है और पेन्शन के १०,००० रुपये की बजाय सिर्फ ५,००० रुपये ही दिए जा रहे है। यही नही, एक बाहरी आदमी को, जिसका कि नसरुल्लाबेग खा के परिवार से किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध नही था, इस पेन्शन का एक हिस्सेदार बना दिया गया। यह तो आपत्तिजनक था ही, ऊपर से यह अन्याय और किया गया था कि पेन्शन का सबसे बडा हिस्सा उसी व्यक्ति को मिल रहा था। इस त्रुटि को ठीक कराने के उद्देश्य से गालिब ने पहले तो नवाब अहमदबख्श खा से शिकायत की तो उन्होने यह कहकर समझाने की कोशिश की कि उनके साथ न्याय किया जाएगा। परन्तु नवाब साहब की ओर से कोई ठोस कदम नही उठाया गया तो गालिब अधीर हो उठे और उन्होने कलकत्ता

ख़ाक में नामूसे पैमाने मुहब्बत[1] मिल गई
उठ गई दुनिया से राहो रस्मे यारी[2] हाय हाय
हाथ ही तेग़ आज़मा का काम से जाता रहा
दिल पे इक लगने न पाया ज़ख़्मे-कारी[3] हाय हाय
किस तरह काटे कोई शबहाए तार-बरशकाल
है नज़र ख़ूगरदए अख़्तर शुमारी हाय हाय
गोश महजूर पयामो-व चश्म महरूम जमाल[5]
एक दिल तिस पर यह ना उम्मीदवारी हाय हाय
इश्क़ ने पकड़ा न था ग़ालिब अभी वहशत का रंग
रह गया था दिल में जो कुछ ज़ौक़ ख़्वारी[7] हाय हाय

ऐसा लगता है कि वह किसी अच्छे ख़ानदान की थी क्योंकि इस मर्सिये में ऐसा संकेत है कि उसने इस डर से कि उनका मामला उसके घर वालों तथा आम लोगों की नज़रों में एक वितण्डा बन रहा है, सम्भवतः आत्महत्या कर ली थी। अगर वह कोई मामूली वेश्या होती तो ऐसे किसी वितण्ड या अपमान का सवाल ही नहीं उठता जिससे उसे अपने हाथों अपनी जान देनी पड़ती। ग़ालिब के युवा हृदय पर इस आरम्भिक प्रेम सम्बन्ध ने एक स्थायी प्रभाव छोड़ दिया था। उनके ज़माने की सामाजिक स्थिति में यह सम्भव है कि उनके जीवन में ऐसे भावुक लगाव और भी हुए हों लेकिन उनके बारे में हम निश्चित रूप से कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है।

अपने समय की ऐसी सामाजिक अव्यवस्था के प्रभाव से ग़ालिब भी बच नहीं सके। उन्होंने शराब पीना शुरू कर दिया। कभी कभी जुआ भी खेलते थे। इस प्रकार की आदतों का निर्वाह पर्याप्त और नियमित आय के अभाव में सम्भव नहीं है। दुर्भाग्यवश ग़ालिब की आय ऐसी थी ही नहीं। जब तक आगरा में उनका नाना जीवित रहा तब तक इस

१ प्रेम के वचन का आदर　२ मित्रता की रीति　३ अच्छा घाव　४ बरसात की अंधेरी रातें　५ सारे जीवन की सम्पत्ति　६ कान संदेश से और आँखें रूप से वंचित हैं, ७ निराश होने की परिस्थिति।

उम्मीद कर सकते है कि वे उनके लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था करती ही रही होगी। नवाव अहमदवख्श खा ने भी अपने पारिवारिक सवधो और नैतिक दायित्व के विचार से उनकी काफी सहायता की। नवाव साहव के गद्दी छोडने के वाद स्थिति वहुत कठिन हो गई। गालिव की आर्थिक हालत तेजी से खराव होने लगी और उन पर कर्ज का भार वढता चला गया। ऐसी स्थिति मे हमेशा ही आदमी कोई-न-कोई वहाना ढूढ लेता है।

पेशन का मामला

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गालिव के ताऊ नसरुल्लावेग खा की मृत्यु के वाद १८०६ मे लॉर्ड लेक ने जो पहला आदेश जारी किया था, वह शोक-सतप्त परिवार के लिए १०,००० रुपये वार्षिक पेन्शन के लिए था। वाद मे नवाव अहमदवख्श खा ने किसी प्रकार इस आदेश मे सशोधन करवा दिया, जिससे यह रकम आधी रह गई और उन्होने पेशन की रकम के हिस्सेदारो मे एक किसी ख्वाजा हाजी का नाम भी जुडवा दिया था। गालिव को इस दूसरे आदेश की जानकारी नही थी। उनका ख्याल था कि पेन्शन १०,००० रुपये वार्षिक की ही है। अव जवकि उनकी आर्थिक हालत मुश्किल हो गई तो उन्हे अचानक याद आया कि इतने सालो से उनके और उनके परिवार के साथ अन्याय किया जा रहा है और पेन्शन के १०,००० रुपये की वजाय सिर्फ ५,००० रुपये ही दिए जा रहे है। यही नही, एक वाहरी आदमी को, जिसका कि नसरुल्लावेग खा के परिवार से किसी भी प्रकार का कोई सम्वन्ध नही था, इस पेन्शन का एक हिस्सेदार वना दिया गया। यह तो आपत्तिजनक था ही, ऊपर से यह अन्याय और किया गया था कि पेन्शन का सवसे वडा हिस्सा उसी व्यक्ति को मिल रहा था। इस त्रुटि को ठीक कराने के उद्देश्य से गालिव ने पहले तो नवाव अहमदवख्श खा से शिकायत की तो उन्होने यह कहकर समझाने की कोशिश की कि उनके साथ न्याय किया जाएगा। परन्तु नवाव साहव की ओर से कोई ठोस कदम नही उठाया गया तो गालिव अधीर हो उठे और उन्होने कलकत्ता

जाकर केन्द्रीय सरकार के सामने अपना दावा पेश किया। क्योंकि पेन्शन मूलरूप से लार्ड लेक ने मंजूर की थी।

कलकत्ता की यात्रा

गालिब कानपुर, लखनऊ बादा इलाहाबाद बनारस, मुर्शिदाबाद आदि के रास्ते लंबी और कठिन यात्रा पूरी करके १८२८ की फरवरी के शुरू में कलकत्ता पहुंचे। उन्होंने अप्रल के अंत में गवर्नर जनरल की कौंसिल के सामने अपनी पहली दरख्वास्त पेश की। उसमें उन्होंने निम्न लिखित मांग रखी

(१) लार्ड लेक ने मई १८०६ में स्वर्गीय नसरुल्लाबेग खां के परिवार के भरण पोषण के लिए १० ००० रुपये वार्षिक की सहायता मंजूर की थी। इसमें से अब तक सिर्फ ५,००० रुपये की रकम ही दी जाती रही है। १० ००० रुपये की मूल रकम अदा करने का हुक्म दिया जाए।

(२) यह पेन्शन नसरुल्लाबेग खां के परिवार के लिए मंजूर हुई थी। लेकिन एक बाहरी आदमी (ख्वाजा हाजी) को जिसका नसरुल्लाबेग खां से या उनके परिवार से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था पेन्शन के हिस्सेदारों में शरीक कर दिया गया था और अब उसके मर जाने के बाद उसके दो लड़कों को अपने बाप का हिस्सा अदा किया जा रहा है। इसको बन्द किया जाए।

(३) मूलरूप से मंजूर किए गए १०,००० रुपये और वास्तव में अदा किए गए ५ ००० रुपये के बीच ५ ००० रुपये वार्षिक का जो अंतर पड़ा है उसका हिसाब लगाया जाए और बकाया रकम परिवार को अदा कर दी जाए। इसमें २००० रुपये वार्षिक की वह रकम भी शामिल की जानी चाहिए जो गलती से ख्वाजा हाजी को अदा की जाती रही है।

(४) अब भविष्य में पेन्शन फिरोजपुर झिरका राज्य की बजाय

ब्रिटिश खजाने से अदा की जानी चाहिए।

अक्तूबर १८२७ मे नवाब अहमदबख्श खा की मृत्यु हो गई। गालिब को यह खबर अपनी यात्रा के दौरान मुर्शिदाबाद मे मिल गई थी। स्पष्ट था कि अब मुकदमा गालिब और स्वर्गीय नवाब के सबसे बडे लडके शम्सुद्दीन अहमद खा के बीच था, जो अपने पिता के जीवनकाल मे ही फिरोज़पुर झिरका का शासक बन गया था। शम्सुद्दीन अहमद खा ने अपनी ओर से जवाब मे लॉर्ड लेक का वह दूसरा हुक्मनामा पेश कर दिया, जिसमे १०,००० रुपये की मूलराशि को घटाकर ५,००० रुपये कर दिया गया था। गालिब ने यह सिद्ध करने के उद्देश्य से कि १०,००० रुपये का उनका दावा और बकाया रकम की अदायगी की उनकी दरख्वास्त न्यायोचित है, यह तर्क पेश किया कि यह दूसरा हुक्मनामा जाली है या किसी सदेहास्पद सूत्र मे प्राप्त किया गया मालूम होता है। उनका तर्क था कि इस दूसरे हुक्मनामे की कोई भी प्रतिलिपि कलकत्ता या दिल्ली के सरकारी रिकार्ड मे नही है, जबकि सबको मालूम है कि सभी दस्तावेजो की सही प्रतिलिपिया सरकारी रिकार्ड मे अनिवार्य रूप मे सुरक्षित रखी जाती है। इसके अलावा, यह दस्तावेज़ फारसी मे था और इस पर लॉर्ड लेक के हस्ताक्षर होने चाहिये थे या कमसे कम इसके पीछे उसके सचिव के हस्ताक्षर होने चाहिये थे, जैसा कि ऐसे मामलो मे आम रिवाज़ था। लेकिन शम्सुद्दीन अहमद खा द्वारा पेश किए गए दस्तावेज पर इस प्रकार का कोई हस्ताक्षर नही था। गालिब का तर्क था कि यह ज़ाहिर है कि यह दस्तावेज़ सच्चा नही है और इसीलिए विश्वास के योग्य नही। अत मे उनकी ओर से कहा गया कि किसी भी हालत मे इसकी वज़ह से पहला आदेश रद्द नही हो सकता, जिसमे १०,००० रुपये वार्षिक की मँजूरी दी गई थी और जो लॉर्ड लेक के हस्ताक्षर से जारी हुआ था और जिसे गवर्नर जनरल की कौंसिल ने अनुमोदित किया था, तथा जिसकी एक प्रति कलकत्ता कार्यालय के रिकार्ड मे मौजूद थी।

गालिब का तर्क इतना सुसगत था और ठोस तथ्यो पर आधारित था

कि भारत सरकार के मुख्य सचिव जार्ज स्विंटन को पूरा विश्वास हो गया कि नवाब द्वारा पेश किया दस्तावेज सच्चा नहीं है और इसलिए गालिब का दावा स्वीकार किया जाना चाहिए। अब चूंकि जब ये जागीरें और वजीफे स्वीकार किए गए थे उस समय सर जान मल्कम लार्ड लेक के सचिव थे। अब वे बम्बई में लेफ्टिनेंट गवर्नर थे। यह दस्तावेज उनकी राय जानने के लिए उनके पास भेजा गया। सर जान मल्कम ने गालिब के तर्कों पर ध्यान देने की बजाय यह विचार प्रकट किया कि नवाब अहमदबख्श खां एक सम्मानित व्यक्ति थे और लार्ड लेक के पूर्ण विश्वासपात्र थे इसलिए इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वे इतने नीचे उतरेंगे और ऐसा जाली दस्तावेज तैयार करेंगे। अपने तर्क को इस तथ्य पर आधारित करते हुए सर जान मल्कम ने निर्णय दिया कि यही दस्तावेज ठीक होगा और सबूत के रूप में इसी को स्वीकार किया जाना चाहिए। इस पर गवर्नर जनरल की कौंसिल ने निर्णय दिया कि सरकार वर्तमान व्यवस्था में किसी प्रकार के रद्दोबदल को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। दूसरे शब्दों में गालिब का मुकदमा खारिज कर दिया गया।

गालिब ने गवर्नर जनरल की कौंसिल के अंतिम फैसले का इंतजार नहीं किया। वे कलकत्ता से चल दिए और १८२९ के नवम्बर के अन्त में दिल्ली लौट आए। फिर भी उनकी यह कलकत्ता यात्रा अनेक कारणों से उनके जीवन में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

कलकत्ता में साहित्यिक विवाद

गालिब के कलकत्ता पहुंचने के कुछ ही समय बाद कलकत्ता कालेज के साहित्यिक समाज ने एक साहित्य गोष्ठी और मुशायरे का आयोजन किया गालिब ने भी इसमें भाग लिया और अपनी दो फारसी गजलें पढ़ीं। कलकत्ता के अधिकांश शायर या तो मुहम्मद हसन 'कतील' के शागिर्द थे या उनके पक्के समर्थक थे। जब गालिब ने अपनी गजलें पढ़ीं तो कतील का प्रमाण देते हुए कुछ लोगों ने उनकी कुछ विरोधी आलोचना की। गालिब ने कभी भी

भारत के फारसी विद्वानो को मान्यता नही दी थी। उनका कहना था कि गहरे अध्ययन और कठोर परिश्रम से किसी भी भाषा को सीखा जा सकता है और उस पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन जब यह सवाल उठता है कि कौन-सा प्रयोग और मुहावरा शुद्ध है तो केवल उस विशिष्ट देश के विद्वान या उनकी रचनाओ को ही प्रमाण माना जा सकता है। उस देश से बाहर के लोगो को, चाहे वे कितने ही बडे पडित क्यो न हो, इस सम्बन्ध मे अन्तिम और आधिकारिक प्रमाण नही माना जा सकता। उनका विचार था कि चूकि कतील भारतीय है, इसलिए उनकी रचनाओ को प्रमाण मानकर यह तय नही किया जा सकता कि मेरा कोई प्रयोग गलत है या सही है। गालिब के इस कथन से श्रोता लोग भडक उठे क्योकि उनकी नजरो मे कतील का फारसी के एक शायर और उस्ताद के रूप मे बडा मान था। फलस्वरूप गालिब की बडी कडी आलोचना और निन्दा होने लगी। उन्हे अपने विरोधी लोगो के मौखिक और मुद्रित आरोपो और आलोचनाओ का उत्तर देना पडा। किसी तरह विरोध थोडा-बहुत कम हुआ लेकिन बिल्कुल समाप्त कभी नही हो सका। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना- का उनके साहित्यिक जीवन पर स्थायी प्रभाव पडा और जैसे-जैसे समय बीतने लगा, भारत के फारसी के विद्वानो के प्रति उनकी कटुता और उपेक्षा की भावना बढती ही गई।

कलकत्ता का सास्कृतिक प्रभाव

कलकत्ता की इस यात्रा का दूसरा परिणाम यह निकला कि जीवन के प्रति गालिब के दृष्टिकोण पर एक स्वस्थ प्रभाव पडा। उस समय कलकत्ता भारत का सबसे ज्यादा विकसित और आगे बढा हुआ शहर था। अग्रेज़ो का राज कायम होने के कारण वहा बहुत-से आधुनिक और नवीनतम वैज्ञानिक आविष्कारो का आम प्रचलन हो गया था। संसार के कोने-कोने से जहाज सुदूर देशो का माल और तिजारती सामान लादकर कलकत्ता के बदरगाह मे पहुचते रहते थे। इससे वहा हर समय एक चहल-पहल बनी रहती थी।

कलकत्ता में रहने वाले अंग्रेजों ने भी वहां के स्थिर और श्लथ पौर्वात्य वातावरण में बहुत अधिक परिवर्तन उपस्थित कर दिया था। वहां उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्थापित हुए फोर्ट विलियम कालेज ने उर्दू में अनेक मौलिक पुस्तकों के प्रकाशन के साथ ही अंग्रेजी तथा कुछ पूर्वीय भाषाओं के अनुवाद भी प्रकाशित किए थे। इनसे उर्दू गद्य में एक नई शैली की शुरुआत हुई थी। इसके अलावा कलकत्ता में ईरानी व्यापारी और यात्री भी काफी बड़ी संख्या में रहते थे। ग़ालिब इनके सम्पर्क में आए और इस प्रकार उन्हें आधुनिक फारसी का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला। इन सब बातों का उन पर यह सम्मिलित प्रभाव पड़ा कि न केवल साहित्य के प्रति बल्कि पूरे जीवन के प्रति जीवन के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं के प्रति उनके दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन आया।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अपनी इस लम्बी और असुविधापूर्ण यात्रा के प्राथमिक उद्देश्य में भले ही वे असफल रहे हों लेकिन बौद्धिक दृष्टि से और सामान्य ज्ञान की दृष्टि से उन्हें बड़ा लाभ प्राप्त हुआ। फारसी के प्रभाव के कारण उर्दू गद्य अब भी फारसी के मुहावरों और शब्दों की भरमार से बोझिल था। वैसे यह स्वाभाविक भी था क्योंकि उस समय के अधिकांश उर्दू लेखकों की शिक्षा-दीक्षा फारसी में हुई थी और हालांकि परिस्थितियों के प्रभाव से उन्होंने उर्दू में लिखना शुरू कर दिया था लेकिन अब भी इस नई भाषा को वे बहुत सम्मान की दृष्टि से नहीं देख पा रहे थे। उनके लेखन का अधिकांश अब भी फारसी में ही होता था तथा उर्दू को अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार कर लेने के बावजूद वे अभी फारसी की अपनी पृष्ठभूमि से पल्ला नहीं छुड़ा पाए थे। फोर्ट विलियम कालेज वह पहली संस्था थी जिसने उर्दू गद्य में एक नया मार्ग प्रशस्त किया। उसका उद्देश्य मुख्यरूप से उन नए अफसरों के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना था जो इंग्लैंड से ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में भरती होते थे और सरकारी शासनतंत्र के अंग के रूप में भारत आते थे। उन्हें उर्दू सीखनी पड़ती थी क्योंकि वह आम लोगों की बातचीत की भाषा थी।

सम्पत्ति के सुख से वंचित करना शुरू कर दिया था। गालिब ने जो मुकदमा दायर किया था उसके फलस्वरूप फिरोजपुर के खजाने से उनकी पेन्शन की अदायगी बिल्कुल बंद कर दी गई थी। इतना ही नहीं, नये नवाब ने ब्रिटिश एजेंट मि० विलियम फ्रेजर से भी गहरी अनबन पैदा कर ली थी। इसका परिणाम बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण हुआ। २२ मार्च १८३५ की शाम को जब फ्रेजर एक दावत में शरीक होकर कश्मीरी गेट के बाहर रिज पर स्थित अपने घर वापस लौट रहा था तो किसी ने गोली मारकर उसकी हत्या कर दी। जांच पड़ताल के बाद नवाब का एक नौकर जिसका नाम करीम खां था गिरफ्तार कर लिया गया और उस पर हत्या का आरोप लगाया गया। बाद में हुई खोज बीन में नये तथ्यों का पता चला और यह संकेत मिला कि इस अपराध में खुद नवाब की साठगांठ थी। फलस्वरूप दोनों पर मुकदमा चलाया गया। वास्तविक हत्यारे को २६ अगस्त १८३५ को फांसी दे दी गई। साथ ही हाकिम ने मुकद्दमे से सम्बंधित सारे तथ्यों की रिपोर्ट गवर्नर जनरल के पास कलकत्ता भेज दी और यह राय दी कि नवाब को भी इस अपराध को प्रोत्साहन देने के जुर्म में यही सजा दी जानी चाहिए। इस विपत्ति से बचने के लिए नवाब के द्वारा किए गए सारे प्रयास असफल रहे। गवर्नर जनरल की कौंसिल ने दिल्ली के हाकिम की सिफारिश को मंजूर कर लिया और अन्त में नवाब को भी ८ अक्तूबर १८३५ को फांसी दे दी गई।

इस घटना से परिस्थिति बिल्कुल बदल गई। फिरोजपुर झिरका की रियासत जिसे अंग्रेजों ने ही अहमदबख्श खां को इनाम में दिया था अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गई। लोहारू की रियासत जो अलवर के महाराव द्वारा दी गई थी अब भी इस परिवार के अधिकार में बच रही। शम्सुद्दीन अहमद खां के छोटे भाई अमीनुद्दीन अहमद खां को लोहारू का नवाब बनाया गया और यह तय हुआ कि वह अपनी रियासत से होने वाली कुल आय का आधा भाग अपने छोटे भाई जियाउद्दीन अहमद खां को देगा जो हमेशा उसका साझेदार था। और इस प्रकार गालिब की पेंशन की

अदायगी का काम दिल्ली कलक्टरी के सुपुर्द हो गया।

इस बीच गवर्नर-जनरल की कौंसिल द्वारा गालिब का यह दावा खारिज कर दिए जाने के खिलाफ कि उनकी पेंशन बढ़ाकर १०,००० रुपये वार्षिक कर दी जाए, गालिब की अपील जारी थी और अन्त मे वह १८४२ मे इग्लैण्ड के गृह-मत्रालय द्वारा रद्द कर दी गई। हालाकि गालिब ने इसके बाद भी मामले को सम्भालने के लिए अपनी कोशिश जारी रखी, लेकिन अन्त मे १८४४ मे उन्हे हार मान लेनी पड़ी।

मुकदमे के आरम्भ मे उन्होने जो कई मागे पेश की थी, उनमे से एक यह भी थी कि भविष्य मे उनकी पेंशन फिरोज़पुर झिरका रियासत की बजाय ब्रिटिश खजाने से दी जाय। उनकी यह माग अपने आप स्वीकृत हो गई क्योकि अब न तो वह नवाब बचा और न उसकी रियासत ही बाकी रही। उन्होने यह भी दरख्वास्त की थी कि उन्हे गवर्नर-जनरल की राज-सभा और दरबारो मे 'खिलअत' (राजपोशाक) का सम्मान प्रदान किया जाए। उनकी पहली प्रार्थना लॉर्ड विलियम बेंटिक के ज़माने मे उसी समय स्वीकृत हो गई थी, जब वे कलकत्ता मे थे। 'खिलअत' का सम्मान उन्हे मुकदमे के अन्त मे लॉर्ड एलेनबरो के शासन काल (१८४२-४४) मे प्राप्त हुआ।

लगभग १५ वर्षो तक खिचनेवाला यह लम्बा मुक़दमा उनके लिए अपनी मामूली-सी आय की दृष्टि से बहुत भारी पड़ा। अपना खर्च चलाने के लिए उन्हे बहुत भारी सूद पर रुपये उधार लेने पड़े और बाद मे कर्ज़ चुकाने के लिए बड़ी तगी सहनी पड़ी।

मुगल दरबार से सम्बन्ध

इस समय हालाकि आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति बहुत खराब थी, लेकिन देश के साहित्यिक क्षेत्रो मे उन्होने काफी ऊचा स्थान प्राप्त कर लिया था। हमे इसका कोई सीधा सबूत नही मिलता है कि मुगल दरबार मे उनका प्रवेश कैसे हुआ। जब वे आगरा छोडकर दिल्ली आए थे, तब

लालकिले के गद्दी तख्त पर अकबरशाह द्वितीय विराजमान था। दिल्ली आने के बाद बहुत सम्भव है कि गालिब नवाब अहमदबख्श खां के परिवार में टिके थे। नवाब का शाही दरबार में परिचय था न ही था बल्कि उन्हें वहां खासा प्रभावपूर्ण स्थान प्राप्त रहा होगा। इसलिए आसानी से यह अनुमान किया जा सकता है कि नवाब अहमदबख्श खां के माध्यम से ही गालिब का शाही दरबार में प्रवेश और परिचय प्राप्त हुआ होगा। शुरू में उन्होंने बादशाह की कृपादृष्टि प्राप्त करने का भी कुछ प्रयास किया। हमें उनके फारसी दीवान में एक कसीदा मिलता है जो उन्होंने अकबरशाह द्वितीय की प्रशंसा में लिखा था, जिसके अन्त में उसके भावी वारिस शाहजादे सलीम का भी उल्लेख किया गया है। लेकिन ऐसा लगता है कि उनका यह प्रयास असफल रहा। हालांकि अकबर शाह द्वितीय ने कुछ कविताएं लिखी हैं, लेकिन वास्तव में वह कला या साहित्य का प्रेमी नहीं था। इसलिए गालिब उस विशेष प्रभावित नहीं कर सके। अकबर शाह द्वितीय की मृत्यु १८३७ में हुई और उसके बाद बहादुरशाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। इस नये बादशाह को उर्दू भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार प्राप्त था। यही नहीं एक मान हुए शायर के रूप में उस उर्दू साहित्य के इतिहास में एक स्थाई स्थान भी प्राप्त होने वाला था। वह 'जफ़र' के उपनाम (तखल्लुस) से शायरी करता था। दुर्भाग्यवश गालिब को इसके दरबार में भी प्रवेश नहीं मिल सका। बहादुरशाह अपने जीवन के उन आरम्भिक दिनों से शायरी करता आ रहा था जब उसके गद्दी पर बैठने की कोई सम्भावना नहीं थी और उसे किसी तरह अपना वक्त काटना था। शुरू में उर्दू के मशहूर शायर 'नसीर' उसके उस्ताद थे और उस इसलाह दिया करते थे। जब महाराजा चन्दूलाल के निमन्त्रण पर 'नसीर' हैदराबाद (दक्षिण) चले गए तो जफ़र ने कुछ समय तक काज़िम अली 'बेकरार' से इसलाह ली। यह साथ भी ज्यादा दिनों तक नहीं रह सका। सन १८०८ में बेकरार भी मोस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन के दल के साथ एक अनुवादक के रूप में उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त के लिए रवाना हो गए। एल्फिन्स्टन को अंग्रेज़ों ने काबुल के अमीर के साथ बात

चीत और सधि करने के लिए भेजा था। वेकरार के जाने के वाद ज़फर ने मुहम्मद इब्राहिम 'ज़ौक' नामक एक नौजवान शायर को अपना साथी वनाया, जो उस समय के साहित्य जगत् मे वडी तेजी के साथ प्रकाश मे आ रहा था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गालिव के लिए दरवार मे पैर जमाने का जो रास्ता था वह उनके दिल्ली आने से पहले ही वन्द हो चुका था। अगर वाद मे उन्होने वादशाह की कृपा प्राप्त करने का प्रयास किया भी होता तो न सिर्फ जौक और उनके गुट ने उनका विरोध किया होता वल्कि उन्होने अकवरशाह द्वितीय और उसके लडके सलीम की प्रशसा मे जो 'कसीदा' लिखा था, वह भी उनके विकास के मार्ग मे एक रोडा सिद्ध होता क्योकि उन दोनो ने ज़फर के खिलाफ सक्रिय रूप से काम किया था ताकि उसे गद्दी न मिल सके।

गालिव को अपनी योग्यता और श्रेष्ठता का गहरा अहसास था। जौक जैसे शायरो और उनके गुट के लोगो के साथ होने वाली इस पराजय ने उन्हे वहुत अधिक पीडित किया होगा। उनका जीवन विपरीत परिस्थितियो के विरुद्ध लगातार सघर्ष का जीवन था। जव वे वहुत छोटे थे, तभी उनके पिता का और फिर इसके वाद उनके ताऊ का देहान्त हो गया। इस प्रकार उनके जीवन मे असुरक्षितता का एक लम्वा दौर चला और उन्हे अपने जीवनयापन से साधनो के लिए दूसरो का मुख देखना पडा। जव वे वडे हुए और उन्हे पता चला कि उन्हे और उनके परिवार को धोखा दिया गया और उन्हे उनके अधिकार से वचित रखा गया। अपने इस अधिकार को पुन प्राप्त करने के लिए उन्हे एक लम्वा मुकदमा लडना पडा जिसमे भी उनकी हार ही हुई और वहुत अधिक खर्च हो गया। इसलिए यह अस्वाभाविक नही कि उनके मन मे ऐसे समाज के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई, जो इस प्रकार के अन्याय को सहन करता है।

ऐसी विपरीत आर्थिक परिस्थितियो मे भी यदि किसी को उसकी वौद्धिक और नैतिक क्षमताओ के लिए उचित मान्यता प्राप्त हो जाती है

तो इस प्रकार उसे कुछ न कुछ मनस्ताप का मौका मिल जाता है। बहादुर शाह ज़फ़र द्वितीय का दरबार कितना ही छोटा और महत्त्वहीन रहा हो लेकिन वही एकमात्र ऐसी जगह थी जहां से इस प्रकार की मान्यता प्राप्त हो सकती थी। लेकिन ग़ालिब को यह भी प्राप्त नहीं हो सकी क्योंकि वे देर से किले पहुंचे थे। इसलिए हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि ग़ालिब में अपने समकालीन साहित्य संसार के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा की भावना पैदा हो गई थी। यह स्थिति अन्ततोगत्वा उनके लिए शक्ति और कमज़ोरी दोनों का ही कारण सिद्ध हुई—इससे उन्हें शक्ति मिली क्योंकि उन्होंने दूसरों की कृपा का मुंह ताकना बन्द कर दिया और उनमें कमज़ोरी भी आई क्योंकि वे विपरीत परिस्थितियों के साथ अपनी तालमेल बैठाने में असफल रहे।

उर्दू दीवान

ग़ालिब शाही दरबार से आधिकारिक मान्यता प्राप्त करने में असफल रहे। लेकिन ऐसे लोग भी थे, जो उनके महत्व को समझते थे और उन्हें एक महान् शायर और लेखक मानते थे। धीरे-धीरे उनकी स्थिति दृढ़ होती गई और अपनी लगन और कठोर परिश्रम के बल पर उन्होंने विद्वानों और काव्य रसिकों के एक दल का समर्थन प्राप्त कर लिया। अपने एक मित्र की प्रेरणा पर उन्होंने अपने उर्दू दीवान का संशोधन किया और उसमें से उन्होंने रचनाएं अलग कर दीं जो या तो दोषपूर्ण थीं या अर्थ की दृष्टि से निरर्थक थीं। सन १८४१ में उनका उर्दू दीवान पहली बार प्रकाशित हुआ। इस छोटी-सी पुस्तक में लगभग ११०० शेर सम्मिलित थे।

कुछ समय बाद १८४५ में उनका फ़ारसी 'दीवान' प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक अधिक बड़ी थी और इसमें लगभग ६,७०० शेर सम्मिलित थे। इन दोनों पुस्तकों के प्रकाशन से उर्दू और फ़ारसी के शायर के रूप में उनकी ख्याति सुदृढ़ हो गई तथा उनके मित्रों और शत्रुओं ने भी अब उन्हें साहित्य की एक शक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया। १८४७ में 'उर्दू दीवान' का

दूसरा संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा। इससे पता चलता है कि साहित्यिक क्षेत्रों में गालिब कितनी तेजी से लोकप्रियता प्राप्त कर रहे थे।

आर्थिक कठिनाई

एक महान् कवि के रूप में मान्यता प्राप्त कर लेना एक बात है, और आराम की जिन्दगी बसर कर पाना बिल्कुल दूसरी बात है। गालिब के आर्थिक साधन लगभग सदा ही उनकी आवश्यकताओं से कम रहे। जब तक उनकी माता जीवित रहीं, वे उन्हें आर्थिक सहायता देती रहीं। हमें निश्चित रूप से यह पता नहीं कि उनकी माता का देहान्त कब हुआ था, लेकिन कुछ संयोगात्मक प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यह दुखद घटना सम्भवत १८४० में ही हो चुकी थी, और उनसे जो कुछ सहायता मिलती थी वह भी बन्द हो चुकी थी। लम्बी मुकदमेबाजी के कारण उनकी आर्थिक स्थिति न केवल और भी खराब हो गई बल्कि उनके ऊपर कर्ज का बोझ भी बढ़ गया। इसलिए अब उनके लिए और उनके दोस्तों के लिए यह आवश्यक हो गया कि कुछ अतिरिक्त आर्थिक साधनों की तलाश करें ताकि उनकी चिन्ताएं कुछ कम हो सकें।

दिल्ली कालेज काण्ड

सन् १८४० में एक ऐसा अवसर आया भी, लेकिन गालिब उससे लाभ उठा पाने में असफल रहे। दिल्ली कालेज के विजिटर जेम्स थॉमसन कालेज के मुआइने के लिए आए। उन्होंने कहा कि कालेज में फारसी की शिक्षा की कोई सन्तोषप्रद व्यवस्था नहीं है और सिफारिश की कि इस कमी को दूर किया जाना चाहिए। किसी ने उनको सुझाया कि इस समय दिल्ली में फारसी जबान के तीन उस्ताद हैं—गालिब मशहूर उर्दू शायर मोमिन और फारसी के प्रसिद्ध विद्वान इमामबख्श सहबाई, और इनमें से किसी को भी इस काम के लिए राजी किया जा सकता है। थॉमसन ने पहले गालिब को मिलने के लिए बुलाया। थॉमसन भारत सरकार के सचिव थे और

गालिब को जानते थे। गालिब को सरकारी दरबारों में कुर्सीनशीन का ओहदा मिला हुआ था और इस नाते वे टॉमसन से पहले भी मिल चुके थे। टॉमसन के अनुरोध के उत्तर में गालिब हमेशा की तरह अपनी पालकी में उनके घर पहुँचे। वहाँ वे फाटक पर ही रुक गए और इन्तज़ार करने लगे कि कोई बाहर आकर उनका स्वागत करे तो वे भीतर जाएँ। जिन लोगों को गवर्नर जनरल के दरबार में सम्मान का स्थान प्राप्त था उनके लिए उस समय यही आम रिवाज था। और अनुमानतः टॉमसन भी पिछले अवसरों पर जब जब गालिब उनसे मिलने जाते रहे होंगे तब उनका इसी प्रकार सम्मान करते रहे होंगे। लेकिन इस अवसर पर गालिब इन्तज़ार करते रहे और उनके स्वागत के लिए कोई बाहर नहीं निकला। थोड़ी देर बाद टॉमसन स्वयं बाहर आए और उन्होंने गालिब से पूछा कि आप पालकी से उतरकर भीतर क्यों नहीं आ गए। जब गालिब ने अपनी समस्या बताई तो टॉमसन ने कहा कि आपका औपचारिक स्वागत तो तभी किया जा सकता है जब आप सरकारी अतिथि के रूप में आएँ। इस समय आप दिल्ली कालेज में नौकरी प्राप्त करने के उद्देश्य से मुझसे मिलने आए हैं इसलिए आपको परम्परागत स्वागत प्राप्त करने का हक नहीं है। इस पर गालिब की प्रतिक्रिया बड़ी तीखी रही। उन्होंने कहा कि मैं दिल्ली कालेज की नौकरी के सिलसिले में आपसे इसी उम्मीद से मिलने आया हूँ कि इससे मेरा रुतबा बढ़ेगा और अपने देशवासियों और ब्रिटिश अधिकारी वर्गों की नजरों में मेरी इज्जत बढ़ जाएगी न कि इसलिए कि मेरी इज्जत और भी गिर जाए। अगर इस नौकरी को स्वीकार करने का मतलब यह है कि मैं उस इज्जत से हाथ धो बैठूँ जो मुझे इस समय प्राप्त है तो फिर मैं इसे अस्वीकार करना ही पसन्द करूँगा। यह कहकर वे अपनी पालकी में आ बैठे और वापस घर लौट आए। इस घटना से उनके चरित्र की दृढ़ता पर गहरा प्रकाश पड़ता है। जब सन् १८०६ में उनके ताऊ की मृत्यु हुई थी तब नौ साल की उम्र से ही उन्हें अंग्रेजों से पेंशन मिल रही थी। हर बार जब भी वे सरकारी दरबार में शरीक होते थे तो सत्कार करनेवाले

अधिकारी की प्रशसा मे 'कसीदा' लिखते थे और सम्भवत उसे दरबार मे सुनाते भी थे। वे अपने-आपको फारसी के उस्ताद और अधिकारी विद्वान मानते थे। इस सब के बावजूद वे आर्थिक रूप से बडी तगी की हालत मे रह रहे थे। इस स्थिति मे सामान्यत कोई भी यह उम्मीद कर सकता था कि वे इस अवसर को नही खोएगे और कालेज की नौकरी स्वीकार कर लेगे क्योकि इससे उनके ब्रिटिश सरक्षक तो प्रसन्न होते ही, फारसी के विद्वान के रूप मे उनकी ख्याति भी दृढ हो जाती और बदले मे उन्हे अपनी आर्थिक कठिनाइयो से भी मुक्ति मिल जाती। इतने सारे लाभ होने की स्पष्ट सम्भावना के बावजूद उन्होने गर्व के साथ उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और परिणाम की जरा भी परवाह नही की—और वह भी केवल इतनी-सी बात पर कि जब वे थॉमसन के घर पहुचे तो उन्होने उनका ढग से स्वागत नही किया। इस सारी घटना से उनके स्वाभिमान और आत्मगौरव की उस भावना का पता चलता है, जिसे वे हर हालत मे सुरक्षित रखने का प्रयास करते थे।

जुआ के लिए जेल की सजा

स्वाभिमान और आत्मगौरव अपनी जगह पर ठीक थे लेकिन इनकी सहायता से उनकी आर्थिक समस्याए हल नही हो सकती थी। ये समस्याए हमेशा की तरह ही कठिन बनी रहीं। गालिब अपनी जवानी के शुरू के दिनो से ही शतरज और चौसर आदि खेला करते थे और इनमे छोटे-मोटे दाव भी लगा लिया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक सकट के दिनो मे उन्होने कुछ गम्भीरता से जुए के इन खेलों मे भाग लेना शुरू किया। इसमे शहर के कुछ धनी व्यापारी भी भाग लेते थे। कुछ समय बाद सब लोग जुआ खेलने के लिए गालिब के घर ही इकट्ठे होने लगे। स्पष्ट है कि इससे गालिब की कुछ आर्थिक सहायता हो जाती थी। उधर पुलिस अधिकारियो को पता था कि शहर मे जुआखोरी बहुत बढ गई है। वे इसे समाप्त कर देना चाहते थे क्योकि इससे समाज मे भ्रष्टाचार फैल रहा था।

हर रोज़ शहर के किसी न किसी कोने में जुए के किसी अड्डे पर छापा मारा जाता था। जुआरी पकड़े जाते थे और उन्हें सज़ा मिलती थी। गालिब को अब तक शहर कोतवाल से संरक्षण मिला हुआ था क्योंकि कोतवाल उनका निजी दोस्त था और एक साहित्य रसिक व्यक्ति था। कुछ समय बाद उसका तबादला हो गया और फज़ुलहसन खाँ नाम का एक नया पुलिस अफसर कोतवाल बना। उसको साहित्य से कुछ लेना देना नहीं था। इसके अलावा वह अपनी कर्तव्यपरायणता के लिए प्रसिद्ध था। उसने इस बुराई को जड़ से मिटा देने का बीड़ा उठाया। एक दिन उसके दल ने स्त्रियों के भेस में गालिब के घर पर छापा मारा। उसने कुछ सिपाहियों को पर्दानशीन औरतों की तरह छिपाकर पालकियों में बैठा दिया और फिर सब लोग गालिब के घर पहुंचे। गालिब अपने दोस्तों के साथ जुए में मगन थे। सिपाहियों ने अन्दर पहुंच कर जुआरियों को रंगे हाथों पकड़ लिया। सभी गिरफ्तार कर लिए गए। कुछ लोगों ने वहाँ से निकलकर भागने की और पुलिस का मुकाबला करने की भी कोशिश की लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ। पैसे वाले व्यापारी तो किसी तरह अपने प्रभाव और पैसे के बल पर इस चक्कर से बच निकले लेकिन गालिब अपने घर में जुए का अड्डा चलाने के आरोप में गिरफ्तार कर लिए गए। बाद में उन्हें मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया और उन पर मुकद्दमा चलाया गया। उनके साथियों ने उन्हें बचाने का हर सम्भव प्रयत्न किया यहाँ तक कि बादशाह ने भी उनकी हिमायत की। परन्तु नतीजा कुछ भी नहीं निकला और अन्त में उन्हें छः महीने की कड़ी कैद और २०० रुपये नकद जुर्माने की सज़ा दी गई। जुर्माना अदा न करने पर कैद की सज़ा साल भर के लिए बढ़ाई जा सकती थी साथ ही यह छूट दी गई कि अगर ५० रुपये अतिरिक्त अदा कर दिए जाएं तो उनसे जेल में मेहनत नहीं कराई जाएगी। गालिब को छः महीने की पूरी अवधि जेल में नहीं बितानी पड़ी क्योंकि उन्हें दिल्ली के सिविल सर्जन डा० राम की सिफारिश पर तीन महीने बाद छोड़ दिया गया।

कैद की सज़ा से गालिब के स्वाभिमान को बड़ी ठेस पहुंची। चूंकि

जुर्माना अदा कर दिया गया था, इसलिए अब केवल सादी कैद की सजा रह गई थी और उन्हे जेल मे कोई काम नही करना पडता था। इसके अलावा जेल के अफसर उनके सामाजिक और साहित्यिक यश से परिचित थे, इसलिए उनका बडा ख्याल रखते थे। उनके लिए जरूरत की चीजे घर से भेजी जाती थी। इसके अलावा, उनसे मिलने के लिए आने वाले मित्रो के साथ किसी तरह की रोकटोक नही की जाती थी। इतना होने पर भी आखिर यह जेल की सजा थी और उन्हे एक नैतिक अपराध के लिए दण्ड मिला था। इससे जनता की नजरो मे उनकी इज्जत का गिरना स्वाभाविक था। गालिब इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना पर बहुत दु खी रहा करते थे। समाज इस तरह की घटनाओ को क्षमा नही करता था, और सजायाफ्ता लोग, चाहे उन्हे किसी भी जुर्म के लिए सजा मिली हो, अच्छी निगाह से नही देखे जाते थे। नतीजा यह हुआ कि गालिब एक लम्बे समय तक अन्याय से दु खी रहे और उन्होने एकाध बार तो यहा तक सोचा कि वे किसी दूसरे देश मे चले जाए, जहा लोग इस बात को लेकर उनकी हसी न उडाए और उनकी निन्दा न करें।

लेकिन यह घटना उनकी प्रतिष्ठा की दृष्टि से चाहे कितनी ही हानिकारक रही हो, साहित्य के लिए यह एक तरह का सौभाग्य सिद्ध हुई। जेल के दिनो मे गालिब ने फारसी मे एक लम्बी नज्म लिखी, जिसमे उन्होने अपनी भावनाओ और अन्तर-मन की स्थितियो का बडा प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। इसमे उन्होने अपने दुर्भाग्य पर आसू बहाते हुए अपनी तकदीर और उस समाज को बडा कोसा है, जिसने उनकी महानता की कोई कद्र नही की और उन्हे शहर के चोर-उचक्को के साथ कैद की सजा भुगतने के लिए मजबूर किया। इसमे उन्होने अपने उन मित्रो की बडी प्रशसा की है, जिन्होने सकट के समय मे भी उनका साथ नही छोडा। इस सिलसिले मे उन्होने खासतौर से अपने एक बहुत बडे मित्र और जाने-माने रईस नवाब मुस्तफा खा शाइफ्ता का जिक्र किया है। ये उर्दू और फारसी के शायर थे और अपनी फारसी शायरी के बारे मे अक्सर गालिब से इसलाह लिया

जेल से छूटने के बाद ग़ालिब कुछ समय तक मौलाना नासिरुद्दीन उर्फ़ मियां काले साहब के साथ रहे जो बहादुरशाह ज़फ़र द्वितीय के धार्मिक और आध्यात्मिक गुरु थे। ग़ालिब के सभी मित्रों को पता था कि इस समय उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब है और उनके लिए नियमित रूप से आमदनी की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे उनकी कुछ सहायता हो सके। बहादुरशाह ज़फ़र के मन्त्री और शाही हकीम थे अहसनुल्ला खां जो बहुत बड़े साहित्य रसिक होने के साथ-साथ ग़ालिब के भी घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने और मौलाना नासिरुद्दीन ने मिलकर बादशाह से ग़ालिब की सिफारिश करने का प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप बादशाह ने जुलाई १८५० के प्रारम्भ में ग़ालिब को तैमूर के राजवंश का एक इतिहास फारसी में लिखने का काम सौंपा और इसके लिए उनके नाम ६०० रुपये सालाना का एक वज़ीफ़ा भी मंजूर कर लिया। इसके अलावा बादशाह ने ग़ालिब को नजमुद्दौला दबीरुल्मुल्क निज़ामजंग का खिताब भी पेश किया। इस प्रकार ग़ालिब मुग़ल दरबार के कर्मचारी बन गए। उनका एक काम निश्चित हो गया और उनकी तनख्वाह भी मुकर्रर हो गई। साथ ही अहसनुल्ला खां का

यह आदेश दिया गया कि वे ऐतिहासिक तथ्य और सामग्री इकट्ठी करके गालिब को दे ताकि गालिब उसे फारसी मे व्यवस्थित रूप दे सके। यह काम १८५७ के 'गदर' की राजनैतिक उथल-पुथल के शुरू होने तक जारी रहा। गालिब इस इतिहास को दो खण्डो मे समाप्त करना चाहते थे— पहला खण्ड तैमूर से हुमायू तक और दूसरा खण्ड अकबर से बहादुरशाह द्वितीय तक। अहसानुल्ला खा को विभिन्न सूत्रो से तथ्य और सामग्री बटोर कर उसे फारसी मे अनुवाद के लिए गालिब को देने का काम सौपा गया था। लेकिन वे इस काम को नियमित रूप से नही कर सके क्योकि उनके जिम्मे और भी बहुत से काम थे। इससे पहले खण्ड का काम कई साल तक जारी रहा और बड़ी मुश्किल से किसी तरह पूरा हो सका। ऐसा लगता है कि दूसरे खण्ड के लिए सामग्री बिलकुल भी इकट्ठी नही हो सकी। जब गालिब ने देखा कि इस काम को जल्दी पूरा कराने मे किसी को भी दिलचस्पी नही है तो उनका उत्साह भी ठण्डा पड गया और उन्होने अहसानुल्ला खा से सन्दर्भ-सामग्री की माग करना बन्द कर दिया। इस तरह दूसरा खण्ड तैयार ही नही हो सका। पहला खण्ड लालकिले के शाही छापाखाने मे सन् १८५४ मे 'मिहरेनीमरुज' के शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके बाद गालिब के लिए कुछ समय तक सुख और समृद्धि के दिन रहे। बादशाह के साहित्य-परामर्शदाता मुहम्मद इब्राहीम जौक का नवम्बर १८५४ मे देहान्त हो गया। अब बादशाह ने उनकी जगह गालिब से राय लेना शुरू किया। बहादुरशाह द्वितीय के शाहजादे मिर्जा फखरुद्दीन ने भी गालिब से इसलाह लेना शुरू किया। मिर्जा फखरुद्दीन ने इसके लिए गालिब को ५०० रुपये सालाना का वजीफा भी देना शुरू किया। इसके साथ ही अवध के आखिरी नवाब वाजिदअलीशाह से भी गालीब को सालाना वजीफे के रूप मे कुछ रकम मिलती थी। स्पष्ट है कि इन वजीफो की बदौलत गालिब को अपनी आर्थिक कठिनाइयो को हल करने मे बडी सहायता मिली।

लकिन दुर्भाग्यवश स्थिति को खराब होन म देर नही लगी। मई १८५७ म भारतीय इतिहास की वह घटना घटी जिसे भारतीय जनता स्वाधीनता के प्रथम सग्राम के रूप म याद करती है और अग्रजो ने जिसे सिपाही-गदर या सनिक विद्रोह का नाम दिया। इसक फलस्वरूप भारतीय मच पर स तमूर के राजघराने का नाम हमेशा क लिए गायब हो गया और देश पर एक विदेशी शक्ति का आधिपत्य हो गया। गालिब भी इस परिवतन क परिणामो से अछूत नही रह सके। गदर की यह घटना अगजो द्वारा किए जाने वाले राजनीतिक दमन और अत्याचार का ही एक परिणाम थी। अग्रजो ने अपना यह दमन नीति तभी स जारी रखी थी जब से उन्होन व्यापारी के अपने मूल पेशे को त्याग कर शासक का रूप धारण कर लिया था। अग्रज कुछ और यूरोपीय देशो के लोगो के साथ सत्रहवी शताब्दी क आरम्भ म व्यापारियो के रूप म भारत म आए थे। इस उद्देश्य स उन्होन इगलड म एक शाही चाटर के अन्तगत ईस्ट इडिया कम्पनी की स्थापना की थी। वे लोग तब तक बडी महनत स यापार करते रहे जब तक पहले आगरा म और बाद म दिल्ली म मुगलो की केन्द्रीय सरकार का शासन दढ और प्रभावकारी रहा। सन १७०७ म औरगजब की मत्यु के बाद साम्राज्य क सुदूर स्थित प्रदेशो पर दिल्ली सरकार का अधिकार ढीला पडन लगा तथा अव्यवस्था और आन्तरिक युद्धो का युग आरम्भ हो गया। इस राज नतिक अव्यवस्था की स्थिति म इगलड और फ्रास की दोनो यापारी कम्प नियो को अपने लिए एक स्वण अवसर दिखाई दिया और उन्होन इस देश म अपना प्रभाव बढान के उद्दे य स यहा की आतरिक राजनीति म अधिक सक्रिय रूप म भाग लना शुरू कर दिया। वे अपन अपन सशस्त्र दस्त रखन लग और उन्होने अपनी उन बस्तियो की किलेबन्दी भी कर ली जहा उनक कारखान और गोदाम वगरह थे। विभिन्न राज्यो क शासको म अपन सम थक और पालतू लोगो को दमन क उद्देश्य स उन्होन स्थानीय लडाई झगडो म भी भाग लेना शुरू किया। कुछ ही दिनो म इगलड और फ्रास क बीच

की यह होड इस देश मे अपना राजनीतिक प्रभाव कायम करने की होड बन गई।

इस देश मे काफी लम्बे समय से शाति और समृद्धि का वातावरण था। इसका एक परिणाम यह हुआ था कि यहा के सामाजिक और प्रशासनिक ढाचे मे कुछ शिथिलता आ गई। पुराने राजवश ताश के महलो की तरह ढह रहे थे। शासको के तख्ते आए दिन उलट रहे थे और रातोरात उनकी जगह नए राजा-नवाब पैदा हो रहे थे। इसमे सन्देह नही कि किसी भी महत्वाकाक्षी व्यक्ति के लिए किस्मत आजमाने का यह बडा अच्छा मौका था। कई साल तक अग्रेज और फ्रासीसी अपने प्रभाव-क्षेत्रो का विस्तार करने की होड मे लगे रहे। लेकिन इस होड मे भाग्य ने अग्रेजो का साथ दिया और उनका काफी बडे इलाके पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया। फ्रासीसी धीरे-धीरे पीछे रह गए और उन्हे अग्रेजो के लिए मैदान छोडना पडा। अब अग्रेजो ने देश के काफी बड़े हिस्से पर या तो स्वय ही आधिपत्य प्राप्त कर लिया था या बाकी बचे हुए हिस्से पर भी वे भाडे के लोगो के जरिये कब्जा करने की सिरतोड कोशिश कर रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन भारतीय राजाओ और नवाबो को अपने अधिकारो से हाथ धोना पडा था, वे अग्रेजो से मन-ही-मन वैर रखने लगे। भीतर ही भीतर सुलगने वाली आग किसी सगठित विरोध के अभाव मे अभी दबी हुई थी और भडकने के लिए किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रही थी। सयोग से यह अवसर भी आ गया, जब ब्रिटिश सैनिक अधिकारियो ने अपने सैनिको को एक नए ढग के कारतूस देने का फैसला किया। इन कारतूसो को दात से छीलकर अलग करना पडता था। लोगो ने यह अफवाह फैल गई कि अग्रेजो ने इस प्रकार हिन्दुओ और मुसलमानो को धर्म-भ्रष्ट करने की एक चाल चली है क्योकि इन कारतूसो मे चिकनाई के लिए गाय और सूअर की चर्बी का प्रयोग किया गया है।

इसके अलावा लोगो को यह अच्छी तरह से मालूम था कि अग्रेज जब से भारत मे आए है, वे यहा के निवासियो का धर्म-परिवर्तन करने और

उन्हें अधिक से अधिक संख्या में ईसाई बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इस बात में सच्चाई भी थी क्योंकि इसी के आधार पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर को १८३० में एक नया रूप दिया गया था। अंग्रेज़ शासकों ने देश के विभिन्न भागों में ऐसे स्कूल और कालेजों की स्थापना की थी जिनमें ईसाई धर्म की शिक्षा को नियमित पाठ्य क्रम का अनिवार्य अंग बना दिया गया था। दिल्ली में भी पुराने दिल्ली कालेज के कुछ विद्यार्थियों ने खुले आम ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था जिनमें मास्टर रामचन्द्र और डा० चमनलाल का नाम विशेषरूप से लिया जाता था। अंग्रेज़ मिशनरियों की नीयत और हरकतों के बारे में आम जनता को पहले से ही संदेह था और इस घटना के बाद तो लोगों को पक्का विश्वास हो गया कि ये पश्चिमी शासक उनके नौजवानों को भ्रष्ट करने और उन्हें अपने पुश्तैनी धर्म से विमुख करने पर उतारू हैं। संदेह के इस वातावरण में कारतूस सम्बन्धी इस नई अफवाह ने आग में घी का काम किया। इस बात पर लोगों का तुरन्त विश्वास हो गया और सैनिकों में अशांति की आग भड़क उठी।

१० मई १८५७ को मेरठ में एक सैनिक परेड के अवसर पर पहला विस्फोट हुआ। वहां के सैनिकों ने अपने अंग्रेज़ कमाण्डर का हुक्म मानने से इन्कार कर दिया और विद्रोह कर दिया। उन्होंने बहुत से अफसरों को मार डाला और जेल के दरवाज़े तोड़ कर अपने उन साथियों को छुड़ा लिया जिन्हें अनुशासन भंग करने के आरोप में पहले से गिरफ्तार कर रखा था। उसी दिन शाम को बागी दस्तों में से सैनिकों ने दिल्ली के लिए कूच कर दिया और दूसरे दिन ११ मई १८५७ को सवेरे वे यहां पहुंच गए। उन्होंने बहादुरशाह से प्रार्थना की कि वे भारतीय सैनिकों की कमान संभाल लें और अपने आप को भारत का बादशाह घोषित कर दें। बहादुरशाह की उम्र उस समय ८२ वर्ष थी और वे लोगों की प्रार्थना को स्वीकार करने में हिचकिचा रहे थे। लेकिन परिस्थितियों का दबाव इतना अधिक था कि वे अधिक समय तक इस मांग को टाल नहीं सके। इस बीच धीरे धीरे नगर में भी विप्लव फैल चुका था। चार चार सिपाहियों के दस्ते

राजधानी मे इकट्ठे होने लगे और उन्होने एक अस्थायी सरकार की स्थापना कर ली तथा बहादुरशाह को उसका नेता नियुक्त कर दिया। दिल्ली के सभी अंग्रेज सैनिको और असैनिक अफसरो को या तो मार डाला गया या वे अपनी जान बचाकर शहर से भाग गए। पाच महीने से अधिक समय तक राजधानी पर भारतीय सेनाओ का कब्जा रहा। अंग्रेज हिम्मत हारने की बजाय चुपचाप उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। अन्त में भाग्य ने उनका साथ दिया और उन्होने लगातार प्रयत्न करके देश के विभिन्न भागो मे विद्रोह का दमन कर दिया और अन्त मे दिल्ली की लडाई मे भी उनकी जीत हुई। १६ सितम्बर १८५७ को उन्होने दिल्ली पर फिर से कब्जा कर लिया।

इसके बाद बदले मे किए जानेवाले दमन का एक लम्बा युग आरम्भ हुआ। झटपट मुकदमे चलाकर हजारो नागरिको को फासी पर लटका दिया गया, उनकी जमीन-जायदाद जब्त कर ली गई या कडी-से-कडी सजा के एवज मे उनसे भारी जुर्माने वसूल किए गए। बहुत से लोग राजधानी को छोडकर दूसरे नगरो मे भाग गए और वहा उन्हे गरीबी और तगी की हालत मे तब तक दिन काटने पडे, जब तक कि परिस्थिति कुछ शात नही हुई और वे अपने घरो को वापस नही लौट सके।

इस विद्रोह के दौरान गालिब दिल्ली मे ही रहे और शहर छोडकर कही नही गए। सच्चाई यह है कि कोई ऐसी जगह ही नही थी, जहा वे शरण लेते। उनके लिए यह बडी कठिनाई का समय था। पिछले काफी लम्बे समय से उनकी आमदनी के सिर्फ दो जरिये रह गए थे—एक तो ७५० रुपये वार्षिक की वह पेंशन जो अंग्रेजो के खजाने से मिलती थी और दूसरा ६०० रुपये वार्षिक का वह वजीफा, जो उन्हे शाही परिवार का इतिहास लिखने के लिए बहादुरशाह से मिला करता था। जैसे ही विद्रोहियो ने दिल्ली मे प्रवेश किया और ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ, वैसे ही ये दोनो जरिये खत्म हो गए। अंग्रेजो से पारिवारिक पेंशन नही मिल सकती थी क्योकि अंग्रेजो का राज खत्म हो चुका था और उधर बहादुरशाह भी

वज़ीफा नहीं दे सकते थे क्योंकि एक तो उनकी स्थिति अनिश्चित थी और दूसरे उनके खज़ाने में इतने पैसे नहीं थे कि इस तरह के वादे पूरे किए जा सकते। गालिब ने बड़ी मुश्किल से किसी तरह ये महीने गुज़ारे।

विद्रोह को तो असफल होना ही था क्योंकि मूलतः उसका आयोजन ही ठीक से नहीं हुआ था और उसकी तैयारी भी बिना किसी निश्चित योजना के बड़े अव्यवस्थित ढंग से हुई थी। विद्रोहियों के नेताओं के सामने कोई निश्चित और सुविचारित कार्यक्रम नहीं था। अलग अलग शहरों के अपने अलग अलग नेता थे और उनके बीच परस्पर विचार विमर्श करने और अपनी नीतियों में तालमेल बिठाने का कोई साधन नहीं था। दूसरी ओर अंग्रेज़ों के पास अपना संगठित नेतृत्व और एक स्पष्ट उद्देश्य था। यहां तक कि भारत की आम जनता भी अंग्रेज़ों के विरोध में एक मत और एकजुट नहीं थी। उदाहरणार्थ—पंजाब ने पूरे दिल से अंग्रेज़ों का समर्थन किया तथा पहले दिल्ली और उसके बाद लखनऊ के विरुद्ध ब्रिटिश आक्रमण में जिस फौज ने आगे बढ़कर भाग लिया था वह विभिन्न सिक्ख राज्यों से अंग्रेज़ों को प्राप्त हुई थी। नेपाल राज्य ने भी अंग्रेज़ों की सहायता की। उधर भारतीय विद्रोही सेनाओं को न तो कोई ढंग का प्रशिक्षण मिला था और न ही उनमें कोई संगठन था। एक एक करके उनके किले गिरते गए और अंत में अंग्रेज़ों ने फिर से प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। यहां तक कि उनकी शक्ति पहले से भी अधिक हो गई। शांति की स्थापना होने और दिल्ली पर फिर से अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो जाने से गालिब को यह आशा बंधी कि अब परिस्थिति सामान्य हो जाएगी और उनकी पारिवारिक पेंशन फिर से जारी हो जाएगी लेकिन बाद की घटनाओं ने उनकी इस आशा पर पानी फेर दिया।

गालिब बहुत बड़े व्यवहारकुशल और दूर की सोचने वाले व्यक्ति थे। जब दिल्ली में बगावत शुरू हुई तो कोई भी यह नहीं कह सकता था कि इसका नतीजा क्या होगा और ऊंट किस करवट बैठेगा। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश विरोधी शक्तियों की गतिविधियों से अपने आपको आम तौर से

अलग ही बनाए रखा। लेकिन लालकिले मे वे अपना सम्बन्ध पूरी तरह से नही तोड सके जो इन विद्रोही गतिविधियो का केन्द्र था और जहा विद्रोहियो के नेता बहादुरशाह का दरबार था। बादशाह को शायरी के बारे मे राय देने वाले मुहम्मद इब्राहीम जौक नवम्बर १८५४ मे मर चुके थे। इसके बाद से उनका ओहदा गालिब सभाल रहे थे। दरबारी इतिहासकार होने के अलावा अपने इस नए काम की वजह से भी उनको लगभग नियमित रूप से ही बादशाह से मिलने जाना पडता था। दूसरी ओर, शहर मे ऐसा कोई भी अग्रेज अफसर बाकी नही बचा था, जिसके साथ गालिब सामाजिक सम्बन्ध बढाते और दोस्ती कायम करते। इसलिए उन्होने इसी मे बुद्धिमानी समझी कि बहादुरशाह के दरबार से अपना सम्बन्ध कायम रखे और अपने विचारो को प्रकट न होने दें। इतनी सावधानी बरतने पर भी तकदीर ने उनका साथ नही दिया।

'सिक्के' का आरोप

दिल्ली पर भारतीय सेनाओ का कब्जा हो जाने पर भी अग्रेजो ने शहर मे और लालकिले मे भी अपने गुप्तचरो का बडा पक्का जाल बिछा रखा था। उनके जासूस हर तरह की खबरे, जिनमे कुछ प्रामाणिक होती थी और कुछ सुनी-सुनाई, नियमित रूप से ब्रिटिश कमाडर के पास भेजते रहते थे, जिसने कश्मीरी गेट के बाहर रिज पर अपना खेमा गाड रखा था। इस तरह के एक भेदिये ने एक दिन यह खबर पहुचाई कि बहादुरशाह द्वारा बुलाए गए एक दरबार मे गालिब भी मौजूद थे और उन्होने एक 'सिक्का' लिखकर बादशाह को भेंट किया था। यह असल मे नए जारी किए जाने वाले एक सिक्के की इबारत थी। लेकिन यह आरोप सही नही था। सिक्के की यह इबारत, जो गालिब के नाम की बताई गई थी, असल मे एक दूसरे छोटे शायर की थी। यही नही, यह चीज उस तारीख के बहुत पहले ही एक पर्चे मे छप चुकी थी, जिस तारीख के बारे मे कहा गया था कि उस दिन गालिब ने इसे बादशाह को भेंट किया था। इतने पर भी उ

भविष्य की रिपोर्ट सरकारी रिकार्ड में दर्ज रही। जब दिल्ली पर अंग्रेज़ों ने फिर से कब्ज़ा कर लिया और गालिब दिल्ली के चीफ कमिश्नर से मिलने गए तो उनके सामने यह रिपोर्ट हाज़िर की गई। यह अंग्रेज़ों की दृष्टि में एक गम्भीर अपराध था लेकिन क्योंकि गालिब ने बगावत में अंग्रेज़ों के खिलाफ कोई सक्रिय भाग नहीं लिया था इसलिए उनकी जान बख्श दी गई और उनकी सम्पत्ति भी ज़ब्त नहीं की गई। सिक्के वाली इस घटना को शायर की एक छोटी-सी दुर्बलता मानकर माफ कर दिया गया। उन दिनों जबकि थोड़ा-सा संदेह होने पर ही लोगों को मौत की सज़ा दी जाती थी या जेल में ठूंस दिया जाता था, तब गालिब के साथ की गई यह रियायत अपने आप में एक बड़ी बात थी। लेकिन इस आरोप का नतीजा यह निकला कि उनकी पारिवारिक पेंशन बन्द कर दी गई और उन्हें गवर्नर जनरल या लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा बुलाए जाने वाले दरबारों में भी आमन्त्रित किया जाना बन्द कर दिया गया। उधर गालिब यह आशा लगाए बैठे थे कि शान्ति की स्थापना के बाद पहले जैसी स्थिति कायम हो जाएगी। इस अप्रत्याशित घटनाक्रम से वे बहुत अधिक निराश हुए। उनकी स्थिति अच्छी होने की बजाय और भी बिगड़ गई। अगर इस मौके पर उनके कुछ मित्र और प्रशंसक न उनकी कोई सहायता न की होती तो उनकी कठिनाइयां इतनी बढ़ जातीं कि उन पर पार पाना उनके बस की बात नहीं रहता। सौभाग्य से इस अवसर पर रामपुर के नवाब यूसुफअली खां ने उनकी बड़ी मदद की।

रामपुर से सम्बन्ध

नवाब यूसुफ़अली खाँ जो १८५५ में अपने पिता मुहम्मद सईद खाँ की जगह रामपुर के शासक बने थे, [illegible] शायरी के बड़े शौकीन थे और गालिब से [illegible] लिखवाया करते थे। आरम्भिक दिनों में उन्हें उनके पिता ने पढ़ाई-लिखाई पूरी करने के लिए दिल्ली भेजा था। उन दिनों अपने अध्ययन-काल के दौरान ही गालिब ने भी उन्हें उर्दू पढ़ाया था और फारसी की

शिक्षा दी थी। उनके रामपुर लौटने पर यह सम्बन्ध समाप्त हो गया। जब वे १८५५ मे गद्दी पर बैठे तो गालिब ने उनके नाम एक नज्म लिखकर भेजी और अपने पुराने सम्बन्ध को फिर से ताज़ा करने की कोशिश की। लेकिन इसका खास कुछ असर नहीं हुआ और उन्हे ढग का कोई जवाब नही मिला। गालिब मन मारकर चुप हो रहे। १८५७ के आरम्भ मे गदर से पहले, गालिब के एक घनिष्ठ मित्र मौलवी फजल खा रामपुर मे थे और उनका नए नवाब पर खासा असर था। उन्होने गालिब को राय दी कि एक 'कसीदा' लिखकर नवाब के नाम भेज दे। उन्हे उम्मीद थी कि इससे गालिब और नवाब के बीच पुराने सम्बन्ध फिर से ताजा हो जाएगे और बहुत मुमकिन है कि नवाब खुश होकर गालिब के लिए कोई स्थाई पेशन बाध दे या इनाम के रूप मे एकमुश्त ही उन्हे कुछ रकम दे दे।

सयोग से इस बार भाग्य ने गालिब का साथ दिया। नवाब यूसुफअली खा कसीदा पाकर खुश ही नही हुए बल्कि उन्होने गालिब का शागिर्द बनने का भी फैसला कर लिया। इस नए सम्बन्ध को कायम हुए अभी मुश्किल से दो महीने बीते थे कि गदर की आधी आ गई। गालिब ने इस बीच भी नवाब के साथ खतो-किताबत जारी रखी। इसके पहले उन्हे नवाब से कभी-कभी आर्थिक सहायता मिल जाती थी। हालाकि उनका कोई नियमित वेतन नही तय हुआ था। जब अग्रेज दिल्ली मे वापस लौट आए और उनके साथ पुरानी मैत्री स्थापित करने मे गालिब को सफलता नही मिली और उनकी पारिवारिक पेशन फिर से जारी नही हो सकी तो उन्होने नवाब से प्रार्थना कि उनके लिए कोई स्थाई वज़ीफा बाध दिया जाय ताकि उनको आर्थिक चिन्ताओ से मुक्ति मिल सके। इस पर नवाब यूसुफअली खा ने रामपुर के खजाने से उनको प्रतिमास १०० रुपये का वज़ीफा भेजने का हुक्म जारी कर दिया।

'दस्तन्बू'

गदर की उथल-पुथल के दिनो मे गालिब अपने घर पर ही रहते थे

और उनके पास करने के लिए खास कोई काम भी नहीं था। इसलिए उन्होंने उस समय शहर में जो कुछ हो रहा था, उसके बारे में कुछ टिप्पणियाँ लिखी थीं। यह रोज़दिन की घटनाओं का कोई नियमित लेखा नहीं था बल्कि खास खास बातों के बारे में कुछ ऐसी टिप्पणियाँ ही थीं जिनका बाद में कभी उस युग की घटनाओं का कोई विस्तृत विवरण तैयार करते समय उपयोग किया जा सकता था। जब अंग्रेज़ों ने दिल्ली पर फिर से कब्ज़ा कर लिया तो ग़ालिब ने अपनी इन टिप्पणियों को कुछ व्यवस्थित करके फ़ारसी में एक छोटी सी किताब तैयार कर दी और उसका नाम रखा—'दस्तंबू'। उनका दावा था कि इसमें मैंने अरबी का एक भी शब्द इस्तेमाल नहीं किया है लेकिन उनका यह दावा पूरी तरह से सही नहीं था। उनकी भरसक कोशिश के बावजूद अरबी के कुछ शब्द उसमें आ ही गए। उल्टे यह हुआ कि दैनिक व्यवहार में आने वाली अरबी की शब्दावली से बचने के उनके यत्नपूर्ण प्रयास के फलस्वरूप फ़ारसी के कुछ ऐसे टकसाली शब्द भी आ गए जिनमें से अधिकांश उस समय पुराने पड़ गए थे और आम व्यवहार में नहीं आ रहे थे। इससे यह किताब पढ़ने में काफ़ी कठिन हो गई और इसे समझ पाना भी मुश्किल हो गया।

उस समय की घटनाओं के बारे में एक सन्दर्भ-पुस्तक के रूप में भी इस पर पूरी तरह से भरोसा नहीं किया जा सकता। हम देख चुके हैं कि ग़दर के दौरान ग़ालिब ने बहादुरशाह से अपने सम्बन्ध बनाए रखे थे और कभी-कभी परिस्थितियों से विवश होकर उन्हें अंग्रेज़-विरोधी तेवरों में भी मिलना जुलना पड़ता था। हालाँकि उन्होंने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ ऐसे कोई ठोस कदम नहीं उठाए थे जिनसे उनकी स्थिति पर आँच आने की सम्भावना होती। लेकिन इतना होने पर भी उनका मन यह सोचकर चिन्तित रहता था कि उनके इस निष्क्रिय रवैये को भी अंग्रेज़ों की नज़र में बाग़ियाना माना जाएगा। इधर बादशाह के साथ के उनके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को उनके अंग्रेज़-विरोधी होने का प्रमाण माना जा सकता है। इसलिए जब उन्होंने अपनी टिप्पणियों के आधार पर 'दस्तंबू' की रचना

की तो उन्होने यह प्रयास किया कि इसमे उल्लिखित घटनाओ मे न तो भारतीय सैनिको की त्रुटियो को कम करके प्रस्तुत किया जाए और न अग्रेज सैनिको के अत्याचार को वढा-चढाकर वताया जाए। इसके अलावा, शुरू से ही वे सोच रहे थे कि इस किताव के तैयार होते ही वे इसकी भेट-स्वरूप प्रतिया अग्रेज अफसरो, अपने कुछ मित्रो और सरक्षको के नाम भेजेंगे। उन लोगो को इसके किसी अश पर आपत्ति न हो, इसलिए उन्होने कुछ घटनाओ को वहुत वढा-चढाकर और कुछ को वहुत ही मामूली ढग से पेश किया था। स्पष्ट है कि ऐसी रचना इतिहास की एक विश्वसनीय सन्दर्भ-पुस्तक के रूप मे नही मानी जा सकती। गालिव ने यह पुस्तक इस उद्देश्य से लिखी थी कि वे इसके आधार पर अग्रेज अधिकारियो से अपने नए सम्वन्ध कायम कर सकेंगे और कठिनाई के समय इसे अपनी मित्रता के सवूत के रूप मे पेश कर सकेगे। जव यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो गालिव ने इसकी भेटस्वरूप प्रतिया भारत और इग्लैण्ड के कुछ प्रतिष्ठित अग्रेजो के पास भेजी। लेकिन यह पुस्तक अपना कोई प्रभाव छोडने मे असफल रही और इससे वह वात नही वन सकी जिसकी गालिव को उम्मीद थी। इस पुस्तक की एक सवसे वडी कमजोरी इसकी भाषा थी, जिसे समझना आसान नही था। इस तरह अधिकारियो से मेल-जोल वढाने का उनका निजी प्रयास असफल सिद्ध हुआ। इस वीच उनके वहुत-से मित्र अधिकारियो से उन्हे क्षमा प्रदान करवाने मे लगे रहे, परन्तु अगर रामपुर के नवाव ने गालिव की सिफारिश न की होती तो इसमे वहुत सन्देह है कि उनके मित्रो का प्रयास कभी सफल भी हो पाता। अन्त मे मई १८६० मे अग्रेजो ने अपना पिछला आदेश वापस ले लिया और इस तरह उनकी पारिवारिक पेशन फिर से चालू हो गई। तीन साल वाद मार्च, १८६३ मे सरकारी दरवारो मे शरीक होने का उनका अधिकार भी उन्हे वापस मिल गया। इस प्रकार उनके लिए मई १८५७ के पूर्व की स्थिति फिर से लौट आई।

कातिअ बुरहान

गालिब मूलतः एक शायर और लेखक थे। आर्थिक कठिनाइयों और सांसारिक चिन्ताओं के बावजूद वे अधिक समय तक अपने आपको साहित्यिक गतिविधियों से दूर नहीं रख सके। गदर के दिनों में गालिब कभी-कभी लालकिले में जाने के अलावा आमतौर से अकेले ही रहते थे और घर से बाहर बहुत कम निकलते थे। वे हमेशा से बहुत अधिक पढ़ने वाले थे और उनकी स्मरण शक्ति भी बहुत अच्छी थी। इन दिनों पुस्तकें ही उनकी सबसे बड़ी मित्र थीं। इन पुस्तकों में फारसी के प्रसिद्ध शब्दकोश बुरहान-ए-कातिअ की एक प्रति भी थी जिसे वे खाली समय में अक्सर उलटते-पलटते रहते थे। इस प्रसिद्ध शब्दकोश का संकलन मुहम्मद हुसैन तब्रीज़ी ने किया था और इसका नया संस्करण कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। इसको उलटते पुलटते समय गालिब को इसमें बहुत-सी त्रुटियां नजर आईं। उन्होंने इसमें प्रत्येक के हाशिये पर अपनी सभी आलोचनात्मक टिप्पणियां करना शुरू किया। धीरे धीरे ये नोट और टिप्पणियां इतनी अधिक हो गईं कि राजधानी की स्थिति के सामान्य होने के बाद ही गालिब ने अपने शिष्यों और मित्रों के लाभ के लिए उनकी नकल तैयार करवा ली। शुरू में उनकी इच्छा इसे प्रकाशित कराने की नहीं थी लेकिन बाद में उनके कुछ मित्रों ने राय दी कि इसके प्रकाशन से सामान्य पाठकों को बड़ा लाभ होगा और फारसी के विद्वानों के क्षेत्र में उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। गालिब ने अब तक भारत के फारसी लेखकों की आलोचना ही की थी और वे कहते थे कि जहां तक फारसी भाषा का सम्बन्ध है इसमें से किसी के प्रमाण को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। बुरहान-ए-कातिअ के सम्पादक और संकलनकर्ता भी भारत में ही जन्मे थे। हालांकि उनके पूर्वज ईरानी मूल के थे। लोगों ने गालिब को इस बात के सम्बन्ध में अपनी समीक्षाओं को प्रकाशित कराने की राय दी ताकि भारतीय लेखकों के सम्बन्ध में उनके पुराने मन्तव्य को भी बल मिल सके। अन्त में यह पुस्तक १८६२ में कातिअ बुरहान के शीर्षक से प्रकाशित हुई। लेकिन इसने तो जैसे किसी

बर्रे के छत्ते को छेड दिया। मानव प्रकृति आमतौर से किसी प्रकार का परिवर्तन पसन्द नही करती। हम मे से अधिकाश अपने पूर्वजो के चरणचिह्नो पर चलना जारी रखते है क्योकि हमे परिवर्तन या किसी अन्य प्रयोग को आज़माते हुए डर लगता है। इससे भी बडी बात यह है कि कई बार ऐसा होता है कि हम यह जानते हुए भी कि कोई चीज युक्तिहीन और निरर्थक है, तब भी हम उसी से चिपके रहते है, क्योकि वह हमे अपने पूर्वजो से प्राप्त है और हम उसमे रद्दोबदल करते हुए लोकमत से भयभीत रहते है। जीवन के सभी क्षेत्रो की तरह यह बात ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र मे भी लागू होती है। 'बुरहन-ए-काति' को एक लम्बे समय से फारसी साहित्य के एक प्रामाणिक कोश के रूप मे मान्यता प्राप्त थी। सभी विद्वानो ने उसकी विश्वसनीयता की पुष्टि की थी। इसलिए उसके विरुद्ध बोलने का मतलब था एक तरह की गुस्ताखी और एक अधार्मिक कृत्य। और गालिब को इसका दोषी करार दिया गया। पुस्तक के प्रकाशित होते ही एक तूफान-सा उठ खडा हो गया। गालिब के मत का खण्डन करते हुए एक के बाद एक किताबें और पुस्तिकाए निकलने लगी। गालिब और उनके साथियो ने भी इन आलोचनाओ के सामने सिर झुकाना ठीक नही समझा। उन्होने इनका भरसक सामना किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, विरोध कम होता गया लेकिन बिलकुल समाप्त नही हो सका। यहा तक कि इस मामले मे मानहानि की एक बात को लेकर गालिब को अदालत की शरण लेनी पडी और अमीनुद्दीन नाम के एक घटिया लेखक के विरुद्ध हरजाने का दावा करना पडा। इसमे भी उन्हे सफलता नही मिली। उस समय के कुछ जाने माने विद्वानो ने उस लेखक की जान बचाने के उद्देश्य से आपत्तिजनक शब्दो का कुछ उल्टा-सीधा अर्थ लगाकर अपमान की गम्भीरता को कम करने का प्रयास किया। गालिब को अदालत के बाहर समझौता करके अपना दावा वापस लेना पडा।

दरबारी शायर

जब १८६० म उनकी पेंशन जारी हो गई और १८६३ म उन्हें सरकारी दरबारा म शामिल होने का हक फिर से मिल गया तो व कुछ अतिरिक्त सम्मान की आकांक्षा करने लगे। उन्होंने एक आवेदन प्रस्तुत किया कि उन्हें इंग्लैण्ड की महारानी का राजकवि नियुक्त किया जाए और उनकी पुस्तक दस्तबू को सरकारी सरक्षण म प्रकाशित किया जाए। लेकिन जसी कि आशा थी य दोनों माँगें अस्वीकृत हो गई। ऐसा लगता है कि अधिकारियों के इस निणय के पीछे समकालीनों के ईर्ष्या द्वेष का प्रमुख हाथ था। इंग्लैण्ड से गृह मन्त्रालय के अधिकारियों का जो उत्तर प्राप्त हुआ वह काफी उत्साहवर्धक ही नहीं बल्कि गालिब के लगभग पक्ष म था। उनका कहना था कि गालिब को महारानी का राजकवि नियुक्त नहीं किया जा सकता लेकिन यदि गवनर जनरल उन्हें दरबारी शायर के रूप म नियुक्त करना चाहे तो सरकार को इसम कोई आपत्ति नहीं होगी। इस पर गवनर जनरल की कौंसिल ने इस सम्बन्ध म एक रिपोर्ट मांगी कि गदर के दिनों म गालिब का व्यवहार कसा था। जाच पड़ताल के दौरान बहादुरशाह के लिए लिखे गए उनके तथाकथित सिक्के के बारे म सरकारी भेदिए कि रिपोट एक बार फिर सामने आई।

सबसे मजे की बात तो यह है कि उन्हें इसके आधार पर ब्रिटिश विरोधी नहीं तो कम से कम विद्रोहियों का समथक माना गया। इससे गवनर जनरल के दरबारी कवि के रूप म नियुक्ति की जो थोड़ी-बहुत सम्भावनाएं थी उन पर भी पानी फिर गया। फिर भी उनके मामले को पंजाब के लेफ्टिनेंट गवनर के पास भेजा गया और आदेश जारी किया गया कि गालिब की दोनों मांगों के सिलसिले म अपने स्तर पर कार्यवाही करके और रिपोर्ट दें।

साहित्यिक लोकप्रियता

यद्यपि गालिब की आर्थिक स्थिति म कोई विशेष सुधार नहीं हुआ

और उन्हे अपना काम चलाने के लिए लगातार सघर्ष करना पडा लेकिन साहित्य जगत् मे उनकी प्रतिष्ठा मे बराबर वृद्धि होती गई। १८५७ की राजनीतिक उथल-पुथल के पहले उनकी उर्दू और फारसी रचनाओ के सग्रह प्रकाशित हो चुके थे। उर्दू 'दीवान' के १८४१ और १८४७ मे दो सस्करण प्रकाशित हो चुके थे और १८४५ मे फारसी 'दीवान' का पहला सस्करण प्रकाशित हुआ था। जनता अब उनकी पुस्तको की फिर से माग कर रही थी क्योकि पुराने सस्करण समाप्त हो चुके थे और उनकी प्रतिया प्राप्य नही थी। विशेप रूप से उर्दू 'दीवान' की बहुत अधिक माग थी। स्वयं गालिब के पास उसकी कोई प्रति नही थी। किसी तरह से उन्होने उसकी एक एक प्रति कही से प्राप्त की और उसे छपवाने के लिए तैयार किया। इसका प्रकाशन १८६१ मे हुआ। लेकिन नया सस्करण ठीक से नही छपा। उसकी साज सज्जा या लिखावट पर विशेप ध्यान नही दिया गया। इसके अलावा उसमे छपाई की भूलें भी बहुत अधिक सख्या मे रह गई। इसलिए गालिब ने स्वयं उसकी एक प्रति का सशोधन किया और उसे कानपुर के प्रसिद्ध निजामी प्रेस मे छपने के लिए भेजा, जहा से वह अगले साल अर्थात् १८६२ मे प्रकाशित हुई। इसी साल लखनऊ के प्रसिद्ध प्रकाशक मुन्शी नवलकिशोर दिल्ली आए और उन्होने गालिब से उनके फारसी 'दीवान' का नया सस्करण प्रकाशित करने की अनुमति मागी। गालिब ने कभी भी स्वयं अपनी रचनाओ को सम्भालकर नही रखा। उनकी रचनाए उनके दो घनिष्ठ मित्रो—नवाब जियाउद्दीन अहमद खां और नजीर हुसैन मिर्जा के पास सुरक्षित रखी थीं। इनमे से पहले के पास फारसी की रचनाए रखी थी और दूसरे के पास उर्दू की। गालिब ने मुशी नवलकिशोर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उन्हे नवाब जियाउद्दीन अहमद खा के पास भेज दिया। मुशीजी अपने साथ पाडुलिपि लखनऊ ले गए। लेकिन कई कारणो से उसका मुद्रण जल्दी पूरा नही हो सका। यह पुस्तक लगभग एक साल बाद १८६३ के मध्य मे प्रकाशित हुई।

उनकी उर्दू और फारसी शायरी के इन अनेक सस्करणो से पता चलता

है कि पाठकों के बीच उनकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। तीन साल की छोटी-सी अवधि में उनकी रचनाओं के चार संस्करणों का निकल जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जनता का सम्मान उन्हें प्राप्त हो रहा था और अब लोग बड़ी बेसब्री के साथ उनकी रचनाओं की प्रतीक्षा करते थे।

रामपुर की यात्रा

नवाब यूसुफअली खां ने जो १८५७ के शुरू में गालिब के शागिर्द बने थे, यह देखकर कि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब है उन्हें रामपुर आने के लिए आमन्त्रित किया। उस समय गालिब को इसकी बड़ी उम्मीद थी कि परिस्थिति शीघ्र ही सामान्य हो जाएगी और उन्हें फिर से सरकारी कृपा प्राप्त हो जाएगी। इसलिए उन्होंने नवाब को उत्तर भेजा कि जैसे ही अंग्रेज अधिकारियों के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे हो जाएंगे वे बड़ी खुशी से रामपुर की यात्रा करेंगे। परन्तु उनकी उम्मीदें पूरी नहीं हुईं और अधिकारियों ने उनकी किसी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इस बीच रामपुर से मिलने वाली सहायता के अलावा उनकी आमदनी के सभी रास्ते बन्द हो चुके थे। फलस्वरूप उन्होंने नवाब यूसुफअली खां का निमन्त्रण स्वीकार कर लेना ठीक समझा। दिल्ली में जीवन भी सुरक्षित नहीं था। ऐसे बहुत से लोग जिन्होंने बहादुरशाह द्वितीय के दरबार से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखा था या जिन्होंने उनकी नौकरी की थी गिरफ्तार कर लिए गए और उन पर मुकदमे चलाए गए तथा अन्य बहुत से लोगों को जो भाग गए थे बराबर परेशान किया जा रहा था और उनका जीवन अब भी खतरे से खाली नहीं था। गालिब पर भी इस आरोप के कारण सन्देह किया जा रहा था कि उन्होंने बादशाह के लिए सिक्के की इबारत लिखी थी। इसलिए उन्होंने सोचा होगा कि फिलहाल कुछ समय तक दिल्ली से दूर रहना ही ठीक है। रामपुर जाने का निर्णय करते समय वे इस बात से तो प्रभावित हुए ही होंगे कि उन्हें नवाब से नियमित रूप से माहवारी वज़ीफा मिल रहा है साथ ही उन्होंने यह भी सोचा होगा कि नवाब की सहायता

से सम्भवत वे अग्रेजो के साथ कोई सन्तोषप्रद समझौता कर सकेगे। गदर के दौरान नवाब अग्रेजो के बहुत पक्के और दृढ समर्थक बने रहे थे। उन्होने अग्रेजो को धन और सशस्त्र सैनिको की सहायता दी थी। इसलिए अग्रेज अधिकारी उनके बहुत कृतज्ञ थे और उनकी इन सेवाओ के बदले उन्होने रामपुर की वर्तमान रियासत के आसपास के यू० पी० के कुछ जिले भी इनाम के रूप मे दे दिए थे। गालिब को इन सारी बातो का पता था तथा इतनी कठिन परिस्थितियो मे रहने के कारण वे यह भी समझने से नही चूके होगे कि इस समय नवाब के प्रभाव का उपयोग करने के अलावा उनके लिए शायद और कोई चारा नही है। इसलिए जनवरी १८६० मे वे रामपुर के लिए रवाना हो गए।

इस समय गालिब का कोई भी बच्चा जीवित नही था। उनके अब तक सात बच्चे हुए थे, लेकिन उनमे से प्रत्येक शैशवावस्था मे ही चल बसा था। उनमे से किसी ने १८ मास से अधिक की आयु प्राप्त नही की। पहले उन्होने अपनी पत्नी के भानजे जैनुलआबिदीन खा को गोद लिया, जो खासे अच्छे शायर थे और 'आरिफ' के नाम से शायरी करते थे। आरिफ १८५२ मे जवानी मे ही अपने पीछे दो छोटे लडको को छोडकर तपेदिक से चल बसे। इनमे से बडे लडके बाकिरअली खा को गालिब की पत्नी पालने के लिए अपने साथ ले आई। इससे छोटा हुसैनअली खा जो उस समय मुश्किल से दो साल का था, गालिब की साली के साथ ही रहा। दुर्भाग्यवश कुछ ही दिनो मे वह भी गुजर गई। अब छोटा लडका भी गालिब के यहा ही रहने लगा। गालिब की पत्नी ने इन दोनो बच्चो को पाला-पोसा। वे इन्हे अपने पोतो की ही तरह पालती थी। जब गालिब रामपुर गए तो दोनो लडके उनके साथ थे। गालिब रामपुर मे दो महीने से ज्यादा रुके। वे वहा कुछ दिन और रुकना चाहते थे क्योकि उन्हे दिल्ली वापस आने की कोई खास जल्दी नही थी और रामपुर मे उन्हे काफी आराम था। इतना होने पर भी उन्हे जल्दी वापस लौटना पडा क्योकि दोनो बच्चे वहां की नई परिस्थिति से ऊब उठे थे और घर के लिए बेचैन रहने लगे थे।

सम्मान की पुन प्राप्ति

जब गालिब रामपुर मे थे तभी नवाब ने ब्रिटिश अधिकारियो से उनकी सिफारिश कर दी थी और इसके फलस्वरूप मई १८६० में उनकी पेंशन फिर से जारी हो गई थी।

कोई इस बात पर आश्चर्य कर सकता है कि आखिर गालिब ७५० रुपये वार्षिक की इस मामूली सी पेंशन को फिर से जारी कराने के लिए क्यो इतने व्यग्र थे। इसका उत्तर यह है कि यह उनके लिए आमदनी का *एकमात्र निश्चित और स्थायी साधन था। और कोई आमदनी तो आकाश* वृत्ति के समान थी और भाग्य के भरोसे ही प्राप्त हो सकती थी। इस प्रकार किसी दिन अचानक प्राप्त होने वाली रकम की आशा के आधार पर कोई नही जी सकता। जीवन की कोई योजना और कार्यक्रम बनाने के लिए आय के किसी अधिक स्थायी साधन की आवश्यकता होती है। गालिब के लिए पेंशन ही एक लम्बे समय से जीविका का निश्चित आधार थी। साथ ही यह उनके लिए सम्मान और गर्व का भी कारण थी। इसका आसानी से *अन्दाज लगाया जा सकता है कि पेंशन का बन्द होना उनके विरोधियो के* बीच एक सुखद चर्चा का विषय बन गया होगा। इसके अलावा इस पेंशन की बदौलत ही उन्हें अब तक ब्रिटिश अधिकारी क्षेत्रो मे आसानी से प्रवेश पाने की सुविधा प्राप्त थी। सरकारी दरबारो मे उन्हें दरबार के सेन्टर की चाहे वह गवर्नर जनरल हो या लफ्टिनेंट गवर्नर दाहिनी ओर दसवी कुर्सी का सम्मान प्राप्त था। पेंशन की मामूली रकम को देखते हुए यह एक बहुत बड़ा सम्मान था और निश्चय ही उनके समकालीनो के लिए ईर्ष्या का विषय रहा होगा। इसलिए *यह समझना मुश्किल नहीं है कि गालिब* अपनी पेंशन और राजसभाओ मे सम्मिलित होने के अपने अधिकार के *लिए क्यों इतने अधीर किन्तित रहते थे।*

मेरठ मे भारतीय सेनाए ११ मई, १८५७ को दिल्ली पहुची थी। इसके पहले गालिब को अप्रैल १८५७ की पेंशन मिल चुकी थी। अब मई १८६० मे उन्हें ७५० रुपये वार्षिक के हिसाब से मई १८५७ से अप्रैल १८६० तक

तीन वर्ष की वकाया रकम के रूप मे २,२५० रुपये मिले, जिनमे से
०० रुपये मार्च १८५६ मे अदा की गई पेशगी रकम के रूप मे काट लिए
। अव २,१५० रुपये की कुल रकम मे से उन्होने १५० रुपये उसी समय
वार के छोटे नौकर-चाकरो मे वख्शीश के रूप मे वाट दिए। जो २,०००
ये वच गए थे, उनमे से १,५०० रुपये उन्हे उस आदमी को देने थे, जो
छले इन वर्षों मे उनके लिए जरूरत की चीजे मुहैया करता रहा था।
सके अलावा अभी उन्हे १,१०० रुपये का कुछ अन्य लोगो का कर्ज भी
काना था। जाहिर है कि वकाया पेशन के रूप मे उन्हे जो कुछ मिला
ा, वह इन सारे खर्चो को पूरा करने की दृष्टि से पर्याप्त नही था। फिर
ी पेशन के फिर से जारी हो जाने से उन्हे नई आशा वधी और उनका
त्साह भी वढा। उन्हे लगा कि अभी सव कुछ नष्ट नही हो गया है और
। अग्रेज अधिकारियो के साथ मैत्री सम्वन्ध वनाने की उम्मीद कर सकते
ै, जवकि पहले वे इस उम्मीद को ही छोड चुके थे। इसके वाद उन्होने
ुने जोश के साथ अपनी 'खिलअत' के लिए और दरवार मे भाग लेने के
अपने अधिकार के लिए कोशिश जारी कर दी। जैसा कि पहले कहा जा
चुका है, दरवार मे भाग ले सकने का सम्मान उन्हे विलियम वैंटिक के
जमाने मे १८२३ मे उस समय प्रदान किया गया था, जव वे अपनी पेशन
के मुकदमे के सिलसिले मे केन्द्रीय सरकार से अपील करने के लिए कलकत्ता
गए हुए थे। 'खिलअत' का सम्मान उन्हे काफी वाद मे प्राप्त हुआ था। इसमे
विभिन्न किस्मो के कपडो के सात पूरे थान, एक कीमती जडाऊ सिरपेच
और मोती की एक माला होती थी। जव वे दरवार मे शरीक होते थे तो
उन्हे दरवार के सदर को कोई नकद नजराना अदा नही करना पडता था।
इसके वदले मे वे उसकी तारीफ मे एक कसीदा पढ दिया करते थे।

पुरानी स्थितियो के वहाल हो जाने पर भी उनकी तगदस्ती पहले की
तरह ही कायम रही। इससे वचने का अव कोई चारा नही था। इसी वीच
उनके मुख्य सरक्षक नवाव यूसुफअली खा की अप्रैल १८६५ मे कैसर से
मृत्यु हो गई।

कल्बअली खा

नवाब यूसुफअली खा की जगह उनका बडा लडका नवाब कल्बअली खा गद्दी पर बैठा। गालिब को नए नवाब और शोकसतप्त परिवार के प्रति अपनी सवेदना प्रकट करने के लिए रामपुर जाना पडा। रामपुर की उनकी इस दूसरी यात्रा के पीछे शायद मातमपुर्सी से भी अधिक महत्त्वपूण एक और कारण था। उन्ह यह चिन्ता थी कि स्वर्गीय नवाब की ओर से उन्ह जुलाइ १८५६ से जो १०० रुपये का वज़ीफा मिल रहा था वह अब कही बन्द न कर दिया जाए। स्वर्गीय नवाब यूसुफअली खा उनके शागिद थे और उनसे अपनी उर्दू नज्मो के बारे म इसलाह लिया करते थ। इसलिए यह मासिक वज़ीफा उनकी सेवाओ के बदले एक प्रकार का मुआवजा या तनख्वाह माना जा सकता था। लेकिन नए नवाब के साथ गालिब का ऐसा कोई रिश्ता नही था। वह उनका शागिद नही था और अगर वह इस वज़ीफे को बन्द कर देता तो कोई अन्याय नही करता। लेकिन इससे गालिब की कठिनाइया बढ सकती थी। इसलिए उनके लिए यह जरूरी हो गया कि व नए नवाब से मिलकर इन्तज़ाम करें कि उनके खिलाफ ऐसा कोई सख्त कदम न उठाया जाए। इसलिए गालिब रामपुर गए और नए नवाब की तख्तपोशी म शरीक हुए। नवाब न आश्वासन दिया कि उनका वज़ीफा पहले की तरह जारी रहेगा। इसस गालिब को वास्तव म बडी सान्त्वना मिली होगी।

जब गालिब रामपुर म थ तभी उन्हें पजाब सरकार स एक पत्र मिला जिसम उनस कहा गया था कि वे अपनी पुस्तक दस्तम्बू की एक प्रति चीफ सक्रेटरी के पास भज दें। ज़ाहिर था कि यह पत्र उनके उसी पिछले आवेदन के उत्तर म था जिसम उन्होने प्राथना की थी कि उनकी पुस्तक को भारत सरकार गदर के इतिवृत्त के रूप म प्रकाशित करे। रामपुर म उन्हें इस पुस्तक की जो प्रति मिली वह ऐसी हालत म नहा थी कि उस सरकार के पास भेजा जा सकता। गालिब को बडी उम्मीद थी कि अगर सरकार न इस पुस्तक को प्रकाशित कर दिया तो इसस उन्ह काफी आर्थिक

लाभ होगा और उन्हे अनेक सामाजिक सुविधाए भी प्राप्त हो सकेंगी। उन्होने तुरन्त उसका नया सस्करण कराने का प्रवन्ध किया और एक सशोधित प्रति मुद्रण के लिए वरेली अपने कुछ मित्रो के पास भेज दी। कुछ समय वाद इस दूसरे सस्करण की एक प्रति उन्होने पजाव सरकार के पास भेजी। सरकार ने इसके सम्वन्ध मे एक विशेपज्ञ से रिपोर्ट मागी। वह विशेषज्ञ या तो इस वोझिल पुस्तक को समझ नही सका या इसकी शैली की प्रशसा नही कर सका। उसने यह कहते हुए एक प्रतिकूल रिपोर्ट भेज दी कि इसकी भाषा पुरानी फारसी है, जिसमे काफी वडी सख्या मे ऐसे शब्द भी आ गए है, जो अव प्रयोग मे नही आते, इसलिए इसे समझ पाना कठिन है।

अपनी अतिम रिपोर्ट मे गवर्नर जनरल ने निर्णय दिया कि गालिव को उनका दरवारी कवि नही नियुक्त किया जा सकता, लेकिन पजाव के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को छूट है कि वह इस मामले पर सहानुभूति से विचार करे और उन्हे एक खास 'खिलअत' भेंट करे तथा दरवार मे उनकी कुर्सी का ओहदा भी वढा दे। यह भी निर्णय किया गया कि सरकारी खर्च पर 'दस्तन्वू' को प्रकाशित करने से कोई लाभ नही होगा। इस प्रकार गालिव की एक और उम्मीद पर पानी फिर गया।

इस वार गालिव रामपुर मे लगभग दस सप्ताह तक ठहरे और दिसम्वर १८६५ के अत मे दिल्ली के लिए रवाना हुए। रास्ते मे उनके साथ एक वडी गम्भीर दुर्घटना हो गई। वारिश होने से नदी मे वाढ आई हुई थी। मुरादावाद पहुंचने के पहले उन्हे नावो के एक पुल से होकर रामगगा को पार करना था। वे पालकी मे थे और उनका सारा सामान और नौकर-चाकर वैलगाडियो मे आ रहे थे। वे पुल के पार पहुचे ही थे कि एक तेज धारा मे पूरा पुल वह गया। इस तरह वे अपने साथियो से अलग हो गए। वडी मुश्किल मे वे अपने अगले पडाव मुरादावाद पहुच गए। जाडे का मौसम था और राते वेहद ठडी थी। गालिव के पास न तो कोई विस्तर था और न कपडे ही थे। इससे उनके पहले से ही विगडे स्वास्थ्य पर वुरा असर पडा और वे वहुत ज्यादा वीमार हो गए। दूसरे दिन सुवह खवर फैल गई

कि गालिब पारवागराव म ठहरे हैं। उस जगह का गवर्नर नायब जब उन्हें जानता था। यह उन्हें अपने घर लिवा लाया। उसने उनके आराम का भी इन्तज़ाम किया और पांव दिलकर उनकी खातिरदारी भी की। जब वे थके-मांदे यात्रा के बाद घर आए तो अपने भाग पर भाग बढ़ और किसी तरह जनवरी १८६६ को पांच महीने बाद घर में दिल्ली पहुंचे।

इस दुर्घटना ने उनके स्वास्थ्य को बिल्कुल तोड़कर रख दिया। रामपुर की यात्रा उनके लिए आर्थिक दृष्टि से भी सफल सिद्ध नहीं हुई। इस कठिन यात्रा पर निकलने के पहले से ही उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था और वे दिल्ली से बाहर जाने के योग्य नहीं थे। परिस्थितियों से विवश होकर उन्हें यात्रा का खतरा मोल लेना पड़ा था। उन पर कर्ज़ सामियों का काफी भारी बोझ चढ़ गया था और रामपुर से ही उन्हें कुछ सहायता की आशा हो सकती थी। नवाब कल्बअली खां खुद भी पढ़ा लिखा आदमी था तथा कवियों और विद्वानों का बड़ा सरपरस्त था। गालिब इतने सालों से रामपुर के दरबारी कवि थे तथा नवाब के स्वर्गीय पिता से उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसके अलावा रियासतों में तख्तपोशी के अवसर पर दरबार और शाही परिवार से सम्बद्ध लोगों को काफी इनाम और ज़मीन बांटने की प्रथा थी। इसलिए गालिब के मन में ज़रूर यह आशा बंधी होगी कि सम्भव है उन्हें नवाब कल्बअली खां से इतनी काफी रकम मिल जाएगी जिससे उनकी चिन्ताएं पूरी तौर से नहीं तो काफी हद तक दूर हो जाएंगी। दूसरी ओर नवाब अपनी उदारता और अपने विद्या प्रेम के बावजूद पैसे खर्च करने के मामले में बहुत सावधान रहता था। काफी बड़ी संख्या में लेखक और कवि उसके आसपास मंडराते रहते थे लेकिन उनमें से प्रत्येक के ज़िम्मे रियासत के प्रशासन का कोई न कोई काम सौंपा हुआ था जिसके बदले में उन्हें तनख्वाह मिलती थी। केवल लेखक या कवि होने के नाते किसी को पैसे नहीं मिलते थे। इस स्थिति में गालिब का निराश होना स्वाभाविक था। उन्हें कोई बड़ा दान नहीं मिल सका और न उनके साथ कोई विशेष व्यवहार ही किया गया। तख्तपोशी के सिलसिले में कुल

१००० रुपये की मामूली-सी रकम उनके लिए मजूर की गई और रवाना होने के ठीक पहले यात्रा-व्यय के रूप मे २०० रुपये और दे दिए गए।

इतना ही नही, जव गालिव दिल्ली लौट आए तो दोनो के वीच अनवन का एक कारण पैदा हो गया, जिसने आग मे घी का काम किया। कुछ दिनो वाद नए नवाव ने गालिव के पास फारसी गद्य का एक टुकडा भेजा और अनुरोध किया कि इसे इस नजर से देख दे कि क्या इसे एक किताव मे दीवाचे (भूमिका) के रूप मे सम्मिलित किया जा सकता है। नवाव ने अपनी पाण्डुलिपि मे कुछ ऐसे मुहावरो का प्रयोग किया था, जो यद्यपि भारत मे प्रचलित थे, लेकिन जिन्हे फारसी के क्लासिकी लेखको द्वारा व्यवहृत प्रयोगो के अनुसार शुद्ध नही माना जा सकता था। गालिव ने उसमे आवश्यक परिवर्तन और सशोधन कर दिया। जव नवाव को उसकी सशोधित प्रति मिली तो उसने गालिव से स्पष्टीकरण मागते हुए कुछ प्रश्न पूछे और साथ ही अपने मत के समर्थन मे फारसी के कुछ भारतीय विद्वानो का हवाला दे दिया। गालिव ने अपने जीवन भर फारसी के भारतीय लेखको को कोई महत्त्व नही दिया था, इसलिए उन्होने वडा अक्खड-सा जवाव देते हुए नवाव की आपत्तियो को अस्वीकार कर दिया। लेकिन नवाव कुछ परम्परावादी व्यक्ति था। उसे गालिव का वात कहने का ढग और भाषा अच्छी नही लगी। दोनो के वीच एक दुखद विवाद छिड गया। गालिव को कुछ घवराहट होने लगी। उन्हे डर था कि कही इसमे उनका माहवारी वजीफा वन्द न हो जाए। फलस्वरूप उन्होने नवाव के आगे एक तरह से घुटने टेक दिए। उधर नवाव ने वात को उसके अन्त तक पहुचाने की वजाय अचानक वीच मे ही विवाद को समाप्त कर दिया। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के वाद दोनो के वीच सहयोग और साहित्यिक विचार-विमर्श जारी रहने की सारी उम्मीदें खत्म हो गई। कुछ अन्य घटनाओ ने भी गलतफहमी को और वढाने मे मदद की। इसके वाद हर तरह का अतिरिक्त भत्ता विल्कुल वन्द कर दिया गया, और आगे से दोनो के वीच प्रेम-सम्वन्ध की वजाय केवल एक औपचारिक सम्वन्ध ही वाकी रह गया।

अन्त

अब गालिब बड़ी तजी से अपने जीवन की आखिरी मंजिल के पास पहुंचते जा रहे थे। एक लम्बे समय से उनका स्वास्थ्य खराब चला आ रहा था। रामपुर से वापसी की यात्रा में उनके साथ जो दुर्घटना हुई थी, उससे उनका स्वास्थ्य और भी गिर गया था। इसके अलावा आर्थिक कठिनाइयों के कारण से वे अपने रहन सहन का स्तर भी पहले जैसा रखने की स्थिति में नहीं रह गए थे। अपने आरम्भिक और जवानी के दिनों में उन्होंने आराम और कुछ ऐश की ही जिन्दगी बिताई थी। बाद के वर्षों में उनकी आमदनी सिमटकर वही कुछ रह गई जो उन्हें ब्रिटिश खजाने से और रामपुर के नवाब से मिलता था। लेकिन इस बीच उनकी जिम्मेदारियां खासतौर से जनुलआबिदीन खां के दोनों लड़कों के आ जाने से कई गुना बढ़ गई थी। अब उनको कई तरह की बीमारियों ने भी घेर लिया था। कब्ज के पुराने रोग के कारण कई तरह की शिकायतें रहने लगी थी। १८६२ और १८६३ में सारे शरीर पर फोड़े निकल आने और नासूर हो जाने के कारण वे बेहद कमजोर हो गए थे। अभी वे इनसे कुछ मुक्त हो हुए थे कि उन्हें हर्निया हो गया और शायद मधुमेह की भी शिकायत हो गई। उनकी खुराक बहुत थोड़ी रह गई थी। अब अधिकांश समय वे घर में ही रहते थे और बाहर नहीं जाते थे। इन परिस्थितियों में किसी प्रकार की उस साहित्यिक गतिविधि की तो बात दूर रही जिसे उन्होंने जीवन भर निभाया था वे रोजमर्रा की चिट्ठी पत्री भी नहीं कर पाते थे। इसलिए उन्होंने दिल्ली के दो प्रमुख साप्ताहिक पत्रों में यह सूचना छपवाई कि अब वे किसी प्रकार की साहित्यिक गतिविधि में भाग लेने में असमर्थ हैं और उन्होंने अपने मित्रों और शागिर्दों से भी अनुरोध किया कि वे लोग अपनी रचनाएं उनके पास संशोधन आदि के लिए न भेजा करें। लेकिन उनकी इस प्रार्थना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उनके मित्र अब भी चिटिठयां भेजते थे और उन्हें उनका उत्तर देना पड़ता था।

अब अन्त समीप ही था। कमजोरी बराबर बढ़ती जा रही थी। उन्हें

२

ग़ालिब की कला

गालिब ने बहुत छोटी, लगभग ११ या १२ वर्ष की आयु से ही शायरी करना शुरू कर दिया था। आरम्भ में उन्होंने अपना तखल्लुस या उपनाम असद रखा था। यह उनके पूरे नाम असदुल्ला खां का ही एक अंश था। लेकिन कुछ समय बाद उन्हें पता चला कि इसी तखल्लुस से एक दूसरा शायर भी लिख रहा है। गड़बड़ी से बचने के लिए उन्होंने अपना तखल्लुस बदलकर गालिब रख लिया। इस नाम का चुनाव भी उनके लिए स्वाभाविक था क्योंकि हजरत मुहम्मद के दामाद अली की एक उपाधि असद अल्लाह अल-गालिब थी। यद्यपि इसका प्रमाण मौजूद है कि इन दिनों भी वे फारसी में लिखते थे लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपना अधिकांश समय वे उर्दू को दिया करते थे।

सन् १८२१ तक उन्होंने इतनी काफी शायरी लिख डाली थी कि उर्दू में अपने एक दीवान का संकलन कर पाते। आरम्भ के दिनों में कुछ ऐसे फारसी शायरों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा जो अपनी बनावटी शैली और अस्पष्टतावादी शैली के लिए प्रसिद्ध थे। गालिब की इस काल की रचनाओं में भी ये खामियां मौजूद हैं। ऐसी बात नहीं थी कि किसी ने उनको इस निरर्थक मार्ग पर चलने से रोकने का प्रयास न किया हो लेकिन वे इतने हठी स्वभाव के और मनमानी करने के आदी थे कि उन्होंने किसी प्रकार की विपरीत आलोचना की परवाह नहीं की। बड़े वर्ष बाद जब वे दिल्ली में जम गए तो उनके कुछ घनिष्ठ मित्रों ने उन पर जोर डाला कि वे अपनी शैली में कुछ परिवर्तन करें और अपने उर्दू दीवान में से ऐसी रचनाओं को निकाल दें जो सामान्य पाठकों में नापसंद सिद्ध हो सकती हैं। वे इस सद्भावपूर्ण और निष्कपट परामर्श को उचित समझ गए और उन्होंने

अपने मूल 'दीवान' को अधिक पठनीय बनाने के उद्देश्य से उसका काफी वडा अश छाटकर निकाल दिया।

उनका यह 'दीवान' पहली वार १८४१ मे प्रकाशित हुआ था। इसका प्रकाशन वास्तव मे उर्दू साहित्य के इतिहास मे एक परिवर्तनकारी घटना सिद्ध हुआ। कुल १,१०० शे'र की इस छोटी-सी किताब का उर्दू भाषा पर आमतौर से और उर्दू शायरी पर खासतौर से जो व्यापक असर पडा, उसे देखकर आश्चर्य होता है। इसके वाद गालिव २८ वर्ष तक और जीवित रहे, लेकिन इस लम्बी अवधि के अन्त तक भी इस 'दीवान' के शे'रो की सख्या १,८०० से अधिक नही हो सकी।

उर्दू अनेक भारतीय भाषाओ, विशेष रूप से खडी वोली और हरयाणवी की ही सीधी वारिस थी। परिणामस्वरूप, इसके शब्दभडार का काफी वडा अश भारतीय सूत्रो से ही उद्भूत हुआ था। इसने फारसी लिपि अपनायी, जो मुसलमानो के आगमन के साथ इस देश मे प्रचलित हुई थी। उर्दू के आरम्भिक शायर फारसी के अच्छे जानकार थे और उनमे से अधिकाश धार्मिक रुचि के थे। जव उन्होने उर्दू मे लिखना शुरू किया तो स्वभावत फारसी के क्लासिकी लेखको का अनुसरण किया। फारसी शायरी के तीन प्रमुख रूप है—गजल, कसीदा और मसनवी।

शायरी के इन सभी प्रकारो और विशेष रूप से गज़ल का विषय प्रेम, मदिरा और रहस्यवाद से ओतप्रोत होता है। इस प्रकार उर्दू शायरी के जन्म के पहले से ही शायरी के रूप और विषय के सम्वन्ध मे काफी हद तक एक निश्चित धारणा वन गई थी। उर्दू शायर इन काव्य-प्रकारो और इनकी विषयवस्तु से वच नही सके, और उन्होने इनका अनुकरण आरम्भ कर दिया। इसीलिए उनकी शायरी विल्कुल कृत्रिम और काल्पनिक होकर रह गई। इस सिलसिले मे शायर का अपना अनुभव वहुत थोडा होता था। लेकिन इसके वावजूद वह एक अनुभवी और जानकार व्यक्ति की तरह लिखने की कोशिश करता था। इसमे भी अधिक चिन्ता की वात तो यह थी कि जीवन की अन्य अनेक समस्याओ पर उर्दू शायरी मे वहुत कम,

ईश्वर

महरम[1] नहीं है तू ही नवाहा-ए राज़[2] का
याँ वरना जो हिजाब[3] है पर्दा है साज़ का

मुँह न खुलने पर है वो आलम कि देखा ही नहीं
ज़ुल्फ़ से बढ़कर नक़ाब उस शोख़ के मुँह पर खुला

उसे कौन देख सकता कि यगाना है वह यकता[4]
जो दुई की बू भी होती तो कहीं दुचार होता

न था कुछ तो ख़ुदा था कुछ न होता तो ख़ुदा होता
डुबोया मुझको होने ने न होता मैं तो क्या होता

परतवे-ख़ुर[6] से है शबनम को फ़ना की तालीम
मैं भी हूँ एक इनायत की नज़र होने तक

है परे सरहदे-इदराक[8] से अपना मसजूद[9]
क़िबले[10] को अहले-नज़र[11] क़िबला-नुमा[12] कहते हैं

आराइशे-जमाल[13] से फ़ारिग़ नहीं हनोज़[14]
पेशे-नज़र है आइना दायम[15] नक़ाब में

---

१ मनश राज़दार २ राज़ के सुर अर्थात् व्याप्त रहस्य ३ पर्दा ४ अद्वितीय ५ मनराम ६ सूर्य-किरण ७ मस्तु ८ ज्ञान या बुद्धि की सीमा ९ जिसका सिजदा किया जाए, पूज्य ईश्वर १० काबा ११ पारखी १२ सतत-मात्र १३ सौन्दर्य का शृंगार, १४ अभी तक १५ हमेशा।

थक थक के, हर मुकाम प दो चार रह गये
तेरा पता न पाये, तो नाचार क्या करें

है वही वदमस्ति-ए-हरजर्रा[1] का खुद उज्रख्वाह[2]
जिसके जल्वे से जमी ता ग्रासमा सरशार[3] है

ग्रपनी हस्ती ही से हो जो कुछ हो
ग्रागही[4], गर नही गफलत ही सही

कसरत ग्राराइ-ए-वहदत[5], है परस्तारि-ए-वहम[6]
कर दिया काफिर, इन ग्रसनामे-खयाली[7] ने मुझे

हर चन्द हर एक शै[8] मे तू है
पर तुझसी तो कोई शै नही है

धर्म

लताफत[9] वे कसाफत[10] जल्वा पैदा कर नही सकती
चमन जगार[11] है ग्राईना-ए-वादे-वहारी[12] का

हम मुव्वहिद[13] है, हमारा केश[14] है, तर्के-रुसूम[15]
मिल्लते[16] जव मिट गई ग्रज्जा-ए-ईमा[17] हो गई

ताग्रत[18] मे तो, रहे न मै-ग्रो-ग्रगवी[19] की लाग
दोजख मे डाल दो, कोई लेकर वहिश्त को

१ प्रत्येक कण की उन्मत्तता, २ उत्तरदायी, ३ परिपूर्ण, उन्मत्त, ४ चेतना, ५, एकत्व की ग्रनेकरूपता, ६ भ्रम की पूजा, ७ काल्पनिक प्रतिमाए, ८ वस्तु, पदार्थ, ९ (रूप) लालित्य, मृदुलता, १० (ग्ररूप) कठोरता, ११ ग्राईने के पीछे का मोर्चा, १२ वसन्त के पवन का दर्पण, १३. एकेश्वरवादी, १४ धर्म, १५ रीति-त्याग, १६ सम्प्रदाय, १७ ग्रास्था के ग्रश, १८. उपासना, १९ मदिरा ग्रौर मधु ।

रहस्यवाद

मकसद है नाजो-गम्जा[१], वले[२] गुफ्तगू मे, काम
चलता नही है दश्न-ओ-खजर कहे बिगैर

हरचन्द, हो मुशाहिद-ए-हक[३] की गुफ्तगू
बनती नही है, बादा-ओ-सागर कहे बिगैर

अस्ले-शुहूदो-शाहिदो-मशहूद[४A] एक है
हैरा हू, फिर मुशाहिदा[४B] है किस हिसाब मे

है मुश्तमिल[५] नुमूदे-सुवर[६] पर वुजूदे-बह्र[७]
या क्या धरा है कतर-ओ-मौजो-हुबाब[८] मे

है गैबे-गैब[९], जिसको समझते है हम शुहूद[१०]
है ख्वाब मे हनोज, जो जागे है ख्वाब मे

हा, खाइयो मत फरेबे-हस्ती
हर चन्द कहे, कि है, नही है

बाजीच-ए-अत्फाल[११] है दुनिया मेरे आगे
होता है शबो-रोज़ तमाशा, मेरे आगे

इक खेल है औरगे-सुलेमा[१२], मेरे नजदीक
इक बात है, ऐजाजे-मसीहा[१३], मेरे आगे

जुज[१४] नाम, नही सूरते-आलम मुझे मजूर
जुज वहम, नही हस्ति-ए-अशिया[१५] मेरे आगे

---

१ बाकपन और अनुरागपूर्ण चितवन, २ परन्तु ३ परमात्मा (सत्य) का पर्यवेक्षण, ४-A दृश्य, ४-B दर्शन द्रष्टा और दृश्यमान तत्वत, ५ सम्मिलित (यहा, 'निर्भर'), ६. रूप और लक्षण, ७ समुद्र का अस्तित्व ८ बूद, लहर और बुलबुला, ९ परोक्ष का परोक्ष, १० उपस्थिति, ११ बच्चो का खेल, १२ सुलेमान का राजसिहासन, १३ ईसा का चमत्कार, १४. सिवाय, अतिरिक्त, १५ वस्तुओ का अस्तित्व ।

ग्रा जब गम से यूं बेहिस[1], तो गम क्या सर के कटने का
होता गर जुदा तन से, तो जानू[2] पर धरा होता

शरते-कतरा[3] दरिया मे फना हो जाना
र्द का हद से गुज़रना, है दवा हो जाना

हुआ हू इश्क की गारतगरी[4] से शर्मिन्दा
सिवाए हसरते-तामीर[5] घर मे खाक नहीं

कैदे-हयातो-बन्दे-गम[6], ग्रस्ल मे दोनो एक है
मौत से पहले, ग्रादमी गम से नजात पाये क्यो

हमद[7] से दिल ग्रगर ग्रफसुर्दा है, गर्मे-तमाशा[8] हो
कि चश्मे-तग[9], शायद, कसरते-नज्जारा[10] से वा हो

'गालिब', कुछ ग्रपनी सई[11] से लहना[12] नही मुझे
खिरमन[13] जले ग्रगर न मलख[14] खाये किश्त[15] को

न लुटता दिन को, तो कब रात को यो बेखबर सोता
रहा खटका न चोरी का, दुग्रा देता हू रहजन को

जब मैकदा छुटा तो, फिर ग्रब क्या जगह की कैद
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई खानकाह[16] हो

किया गमख्वार ने रुस्वा, लगे ग्राग इन मुहब्बत को
न लावे ताब जो गम की, वो मेरा राज़दा क्यो हो

कफस[17] मे, मुझसे रूदादे-चमन[18] कहते, न डर, हमदम
गिरी है जिस प कल बिजली, वो मेरा ग्राशियां[19] क्यो हो

---

१ स्तब्ध, चेतनाशून्य, २ घुटना ३ बूंद का ग्रानन्द, ४ लूट, ५ निर्माण क ग्रभिलाषा, ६ जीवन की कारा ग्रौर दुःख का बंधन, ७ ईर्ष्या, ८ तमाशे मे लीन, ९ संकीर्ण दृष्टि, १० दृश्यों का बाहुल्य, ११ प्रयत्न, १२ भाग्य मे, १३ खलिहान, १४ टिड्डी, १५ खेती, १६ ग्राश्रम, १७ पिंजरा, १८ चमन का हाल, १९ घोंसला।

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो
हम सुख़न कोई न हो और हम ज़बाँ कोई न हो

बेदरो दीवार सा इक घर बनाया चाहिये
कोई हमसाया[१] न हो और पासबाँ[२] कोई न हो

पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और अगर मर जाइये तो नौहा ख़्वाँ[३] कोई न हो

जी जले ज़ौक़े फ़ना की नातमामी[४] पर न क्यों
हम नहीं जलते नफ़स हरचन्द आतशबार[५] है

सज़ा क्या फ़स्ल गुल[६] कहते हैं किसको कोई मौसम हो
वही हम हैं कफ़स है और मातम बालो पर[७] का है

मक़दूर[८] हो तो ख़ाक से पूछूँ कि ऐ लईम
तूने वो गंजहा ए गिरामाया[९] क्या किये

न सुनो गर बुरा कहे कोई
न कहो गर बुरा करे कोई

रोक लो गर ग़लत चले कोई
बख़्श दो गर ख़ता करे कोई

कौन है जो नहीं है हाजतमन्द[१०]
किसकी हाजत रवा करे कोई

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले

---

१ पड़ोसी २ द्वारपाल ३ रोनेवाला ४ अपूर्णता ५ आग बरसाने वाला ६ बसन्त ७ पंख ८ सामर्थ्य ९ अमूल्य निधियाँ १० ज़रूरतमन्द।

ने तीर कमा मे है, न सैयाद[1] कमी[2] मे
गोशे मे कफस के, मुझे आराम बहुत है

O

मानव

गिरती थी हम प बर्क-तजल्ली, न तूर पर
देते हैं बादा, जर्फ-कदह ख्वार[3] देखकर

कतरा अपना भी हकीकत मे है दरिया, लेकिन
हमको तकलीदे-तुनुक जर्फि-ए-मसूर[4] नहीं

दोनो जहान देके, वो समझे, यह खुश रहा
या आ पडी यह शर्म, कि तकरार क्या करे

क्या शम्अ के नहीं हैं हवाख्वाह अहले-बज्म[5]
हो गम ही जा-गुदाज[6], तो गमख्वार क्या करे

सब कहा, कुछ लाल-ओ-गुल[7] मे नुमाया[8] हो गईं
खाक मे क्या सूरतें होगी, कि पिन्हा[9] हो गईं

याद थी, हमको भी, रगारग बज्म आराइया[10]
लेकिन अब नक्शो-निगारे-ताके-निसिया[11] हो गईं

इतना ही मुझको अपनी हकीकत मे बेद[12] है
जितना कि वह्मे-गैर से हू पेचो-ताब मे

O

---

१ शिकारी, २ घात मे, ३ मदिरा पीने वाले का साहस, ४ मसूर के ओछेपन का अनुकरण, ५ महफिल वाले मित्र, ६ जान को पिघलाने वाला, ७ लाला और गुलाब के फूल, ८ प्रकट, ९ छिपी हुई, १० हर्ष और ऐश्वर्य की महफिल जमाना, ११ विस्मृति के ताक मे बने बेल-बूटे, १२ दूरी ।

जीवन-दर्शन

मिरी तामीर में मुज़्मर[1], है इक सूरत ख़राबी की
हयूला[2] बर्क़े ख़िरमन[3] का है ख़ून-गर्म दहक़ाँ का

सरापा रेहने इश्क़ो नागुज़ीरे उल्फ़ते हस्ती[4]
इबादत बर्क़ की करता हूँ और अफ़सोस हासिल का

है ख़याल हुस्न में हुस्ने अमल का सा ख़याल
ख़ुल्द का इक दर है मेरी गोर के अन्दर खुला

बस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्साँ होना

हवस को है नशाते कार क्या क्या
न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या

दिल हर क़तरा है साज़े अनलबह्‌र[5]
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या

क़तरे में दजला[6] दिखाई न दे और जुज़्व में कुल
खेल लड़कों का हुआ दीदए बीना न हुआ

जान दी दी हुई उसी की थी
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ

तौफ़ीक़[8] बअन्दाज़ए हिम्मत[9] है अज़ल[10] से
आँखों में है वो क़तरा कि गौहर न हुआ

है आदमी बजाए ख़ुद इक महशरे-ख़याल[12]
हम अंजुमन समझते हैं ख़ल्वत[13] ही क्यों न हो

---

१ छिपा हुई २ आकार ३ खलिहान पर गिरने वाली बिजली ४ पूर्णतया प्रेम में लीन होकर भी मुझे जान की अनिवार्य अभिलाषा है ५ कार्यानन्द ६ अरबी वाक्य—मैं सत्य (ईश्वर) हूँ ७ समस्त नदी ८ विवेक दृष्टि ९ सामर्थ्य १० साहस के अनुसार ११ अनादिकाल १२ विचार-समूह १३ एकांत।

रात दिन, गर्दिश मे है सात आस्मा
हो रहेगा कुछ न कुछ, घबराये क्या

उम्र भर देखा किए मरने की राह
मर गए पर देखिए, दिखलाए क्या

दामे-हर मौज मे है, हल्क-ए-सदकाम निहग[1]
देखे क्या गुजरे है कतरे प, गुहर होने तक

यह नज़र वेश नही, फुर्सते-हस्ती गाफिल
गर्मि-ए-वज्म[2] है, इक रक्से-शरर[3] होने तक

गमे-हस्ती का, 'असद' किससे हो जुज मर्ग[4] इलाज
शम्अ हर रग मे जलती है सहर होने तक

की वफा हम से, तो गैर उसको जफा[5] कहते है
होती आई है, कि अच्छो को बुरा कहते है

रौ मे है रख़्शे[6]-उम्र, कहा देखिए, थमे
नै[7] हाथ बाग पर है न पा है रिकाब मे

अहले-बीनश[8] को, तूफाने-हवादिस[9], मकतब[10]
लतम-ए-मौज[11] कम अज सैलि-ए-उस्ताद[12], नहीं

रज से खूगर[13] हुआ इसा, तो मिट जाता है रज
मुश्किले मुझ पर पड़ी इतनी, कि आसा हो गई

हगाम-ए-जबूनि-ए-हिम्मत[14] है इफआल[15]
हासिल न कीजे दह्र से, इबरत[16] ही क्यो न हो

---

१ शतमकर-मुख-वृत्त, २ महफिल की गर्मी, ३ चिनगारी का नृत्य, ४. मृत्यु के अतिरिक्त, ५ अन्याय, जुल्म, ६ रख्श-अश्व, ७ न तो, ८ आख वाले, बुद्धिमान, ९ विपत्तियो का तूफान, १० पाठशाला, ११ लहरो का थपेडा, १२ गुरु के तमाचे से कम, १३ आदी, अभ्यस्त, १४ कम हिम्मती की अधिकता, १५ लज्जा, १६ शिक्षा।

वारगाह हस्ती[1] में लाला दाग़ सामाँ है
बर्क़े ख़िरमने राहत[2] ख़ूने गर्मे दहक़ाँ[3] है

क़तरा दरिया में जो मिल जाय तो दरिया हो जाय
काम अच्छा है वो जिसका कि मआल[4] अच्छा है

एक हंगामे पे मौक़ूफ़[5] है घर की रौनक़
नौहा ए ग़म[6] ही सही नग़्म ए शादी न सही

रहा आबाद आलम अहले हिम्मत के न होने से
भरे हैं जिस क़दर जामो सुबू[7] मैख़ाना[8] ख़ाली है

है अहले ख़िरद[9] किस रविशे ख़ास[10] पे नाज़ाँ
पा बस्तगि ए रस्मो रहे आम[11] बहुत है

नज़र में है हमारी जाद ए राह फ़ना[12] 'ग़ालिब'
कि यह शीराज़ा[13] है आलम के अज्ज़ा ए परीशाँ[14] का

प्रेम

कहते हो न देंगे हम दिल अगर पड़ा पाया
दिल कहाँ कि गुम कीजे हमने मुद्दआ[15] पाया

इश्क़ से तबीयत ने ज़ीस्त[16] का मज़ा पाया
दर्द की दवा पाई दर्दे बेदवा पाया

---

१ अस्तित्व का कार्यक्षेत्र २ सुख रूपी अन्न के खलिहान पर गिरने वाली बिजली ३ किसान का गर्म खून ४ अन्त परिणाम ५ निर्भर ६ दुखों का विलाप ७ मद्यपात्र और मद्यकलश ८ मदिरालय ९ बुद्धिमान १० विशेष आचरण ११ सामान्य रीति रिवाज का बन्धन १२ मृत्यु-मार्ग १३ तारतम्य १४ बिखरे टुकड़े १५ अभिप्राय १६ जीवन ।

सादगी-ओ पुरकारी[1], वेखुदी - ओ - हुशियारी
हुस्न को तगाफुल[2] मे, जुरअत-आज़मा[3] पाया

बू-ए-गुल, नाल-ए-दिल, दूदे-चिरागे महफिल[4]
जो तेरी वज्म से निकला, सो परीशा निकला

मैंने चाहा था कि अन्दोहे[5]-वफा से छूटूं
वो सितमगर मेरे मरने प भी राज़ी न हुआ

किया आईना-खाने का वो नक्शा, तेरे जलवे ने
करे, जो परतवे-खुर्शीद[6], आलम शवनमिस्तां का

ताराजे-काविशे-गमे-हिजरा[7] हुआ, 'असद'
सीना, कि था दफीना[8] गुहरहा-ए-राज[9] का

वाए दीवानगि-ए-शोक[10], कि हरदम मुझ को
आप जाना उधर, और आप ही हैरा होना

की मिरे कत्ल के वाद, उसने जफा से तौवा
हाय, उस जूद पशेमा[11] का पशेमा होना

वेनियाजी[12] हद से गुजरी, वन्दा परवर कव तलक
हम कहेगे हाले-दिल, और आप फरमायेंगे क्या

गर किया नासेह ने हम को कैद, अच्छा, यू सही
ये जुनूने-इश्क के अन्दाज़ छुट जायेंगे क्या

ये न थी हमारी किस्मत, कि विसाले-यार[13] होता
अगर और जीते रहते, यही इन्तिज़ार होता

---

१ चालाकी, २. वेरग्बी, ३ साहस का परीक्षक, ४ महफिल के दीपक का धुआ, ५ प्रेम निभाने का कष्ट, ६ प्रभाकर प्रतिविम्ब, ७ वियोग-दुःख से तवाह ८ कोषागार ९ रहस्य-रूपी रत्न, १० आकाक्षाओं का चक्कर ११ जल्द पछताने वाला, १२ निस्पृहता, उपेक्षा, १३ प्रिय मिलन।

कोई मेरे दिल स पूछे तरे तीरे नीमकश[1] को
यह खलिश[2] कहा स होती जो जिगर क पार होता

बला ए जा है गालिब उसकी हर बात
इबारत[3] क्या इशारत[4] क्या अदा[5] क्या

दर्द मिन्नतकशे-दवा[6] न हुआ
मैं न अच्छा हुआ बुरा न हुआ

गो मैं रहा रहीने सितमहा ए रोज़गार
लेकिन तिरे खयाल से गाफिल नहीं रहा

लाग हो तो उसको हम समझें लगाव
जब न हो कुछ भी धोका खाय क्या !

बहरा हू मैं तो चाहिए दूना हो इल्तिफात[7]
सुनता नहीं हू बात मुकरर[8] कहे बिगर

आह को चाहिये इक उम्र असर होते तक
कौन जीता है तरी जुल्फ के सर होते तक

हमने माना कि तगाफल न करोग लेकिन
खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक

क्या स हू क्या बनाऊ जहाने-खराब म
शबहा ए हिज्र[9] को भी रखू गर हिसाब म

कासिद[11] क आते आते खत इक और लिख रखू
मैं जानता हू जो वो लिखेंगे जवाब म

---

१ मर्धखिचा तीर २ चुभन वेदना ३ बात ४ सकेत ५ भाव भगिमा ६ दवा का आभारी ७ ससार क अत्याचार का शिकार ८ दुबारा प्रेम ९ दुबारा १ विरह की रातें ११ पत्र-वाहक ।

मुझ तक कब, उनकी बज़्म मे, आता था दौरे-जाम
साकी ने कुछ मिला न दिया हो शराब मे

लाखो लगाव, एक चुराना निगाह का
लाखो बनाव, एक बिगडना इताब[1] मे

ख़्वाहिश को, अहमको ने, परस्तिश[2] दिया करार
क्या पूजता हू उस बुते-बेदादगर[3] को मैं

नाला जुज़ हुस्ने-तलब[4], ऐ सितम ईजाद[5], नही
है तकाज़ा-ए-जफा[6] शिकव-ए-बेदाद[7] नही

वो आयें घर मे हमारे, खुदा की कुदरत है
कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं

सब रकीबो से हो नाखुश, पर ज़नाने-मिस्र[8] से
है जुलैखा खुश, कि मह्‌वे-माह-ए-कन्आन्[9] हो गई

नीद उसकी है, दिमाग उसका है, रातें उसकी हैं
तेरी ज़ुल्फें, जिसके बाज़ू पर, परीशा हो गई

बे इश्क उम्र कट नही सकती है, और या
ताकत बकद्रे-लज़्ज़ते-आज़ार[10] भी नही

हा वो नही खुदा परस्त, जाओ वो बेवफा सही
जिसको हो दीनो-दिल अज़ीज़, उसकी गली मे जाये क्यो

वारस्ता[11] इससे है, कि मुहब्बत ही क्यो न हो
कीजे हमारे साथ, अदावत ही क्यो न हो

है मुझको तुझसे तज़किर-ए-गैर[12] का गिला
हर चन्द बर सबीले-शिकायत[13] ही क्यो न हो

---

१ क्रोध, २ पूजा, आराधना, ३ ज़ालिम माशूक, ४ मागने की खूबी, ५ ज़ालिम, ६ ज़ुल्म करने का तकाज़ा, ७ ज़ुल्म की शिकायत, ८ मिस्र की स्त्रिया, ९ कन्आन् के चन्द्रमा—यूसुफ—पर मुग्ध, १० विष-पान का आनन्द उठाने योग्य, ११ बेपरवाह, १२ गैर (प्रतिद्वन्द्वी) का ज़िक्र, १३ शिकायत के तौर पर।

जान कर कीजे तग़ाफ़ुल कि कुछ उम्मीद भी हो
यह निगाहे-ग़लत अन्दाज़[1] तो सम[2] है हमको

किसी को देके दिल कोई नवा सजे-फ़ुग़ां[3] क्यों हो
न हो जब दिल ही सीने में तो फिर मुंह में ज़ुबां क्यों हो

वो अपनी ख़ू[4] न छोड़ेंगे हम अपनी वज़्अ[5] क्यों बदलें
सुबुक सर[6] बन के क्या पूछें कि हमसे सरगिरां क्यों हो

वफ़ा कैसी कहां का इश्क़ जब सर फोड़ना ठहरा
तो फिर ऐ संग दिल तेरा ही संगे आस्तां क्यों हो

न करता काश नाला मुझको क्या मालूम था हमदम
कि होगा बाइसे अफ़्ज़ाइशे दर्दे दरूं वो भी

मिरे दिल में है ग़ालिब शौक़ वस्लो शिकवा ए हिजरां[9]
ख़ुदा वो दिन करे जो उससे मैं यह भी कहूं वो भी

'ग़ालिब' तिरा अहवाल सुना देंगे हम उनको
वो सुन के बुला लें यह इजारा नहीं करते

मुझसे मत कह तू हमें कहता था अपनी ज़िन्दगी
ज़िन्दगी से भी मिरा जी इन दिनों बेज़ार है

करम कीजे न तअल्लुक़ हम से
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही

हम भी दुश्मन तो नहीं हैं अपने
ग़ैर को तुझसे मुहब्बत ही सही

देखना क़िस्मत कि आप अपने पे रश्क आ जाय है
मैं उसे देखूं भला कब मुझसे देखा जाय है

१ अनजान निगाह २ ज़हर ३ फ़रयादी ४ आदत ५ स्वाभिमान ६ हल्का ७ हृदय ८ आन्तरिक दुःख में वृद्धि का कारण ९ मिलन की कामना तथा विरह की शिकायत का शौक़।

हाय था दिल मे, यही गर्मी गर अन्देशे मे है
आबगीना[1] तुन्दि-ए-सहबा[2] से पिघला जाये है

गरचे है तर्जे-तगाफुल[3], पर्दादारे-राजे-इश्क[4]
पर हम ऐसे खोये जाते है, कि वो पा जाये है

तस्कीं को हम न रोयें, जो जौके-नजर[5] मिले
हूराने-खुल्द[6] मे तेरी सूरत मगर मिले

अपनी गली मे, मुझको न कर दफन, बादे कत्ल
मेरे पते से खल्क[7] को क्यों तेरा घर मिले

ऐ साकिनाने-कूच-ए-दिलदार[8] देखना
तुमको कही जो 'गालिबे'-आशुफ्ता सर[9] मिले

आतशे-दोजख मे, यह गर्मी कहा
सोजे-गमहा-ए-निहानी[10] और है

बारहा देखी है उनकी रंजिशे
पर कुछ अब के सर गिरानी[11] और है

ने मुजद-ए-विसाल[12] न नज्जार-ए-जमाल[13]
मुद्दत हुई, कि आश्ति-ए-चश्मो-गोश[14] है

हुस्ने-मह[15], गरचे बहगामे-कमाल[16], अच्छा है
उससे मेरा महे-खुर्शीद जमाल[17] अच्छा है

---

१ शीशे का पात्र (दिल), २ शराब की तेजी, ३ बेपरवाही की अदा, ४ प्रेम के भेद को छिपानेवाला, ५ दर्शनानन्द, ६ स्वर्ग की अप्सराए, ७ जगत, ८ माशूक की गली मे बसने वालो, ९ सरफिरा गालिब, १० आन्तरिक सन्ताप की जलन, ११ अप्रसन्नता, १२ प्रियमिलन का शुभ सन्देश, १३ भव्य रूप का दर्शन, १४ आखो और कानो को शाति, मैत्री, १५ चन्द्रमा का सौन्दर्य, १६ पूर्णिमा के समय, १७ सूर्य-रूपी चन्द्रमा।

उनके देखे से जो आ जाती है मुंह पर रौनक
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है

न हुई गर मिरे मरने से तसल्ली न सही
इम्तिहां और भी बाकी हो तो यह भी न सही

है वस्ल हिज्र आलमे-तमकीनो ज़ब्त[1] में
माशूके शोख़ ओ आशिक़ दीवाना[2] चाहिये

उस लब से मिल ही जायगा बोसा कभी तो हां
शौक़ फ़जूल ओ जुरअत रिन्दाना[3] चाहिये

वो आके ख़्वाब में तस्कीन इज़्तिराब तो दे
वले मुझे तपिशे दिल[4] मजाल-ख़्वाब[5] तो दे

दिया है दिल अगर उसको बशर है क्या कहिये
हुआ रक़ीब तो हो नामावर है क्या कहिये

मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़, जीने और मरने का
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पे दम निकले

खुदी

यह लाग-ख्वफ्न असदं सम्ता जा की है
हूं मग़फ़िरत[6] कर अजब आज़ाद मर्द था

---

१ रंग रवाब और संयम २ शोख़ माशूक़ और दीवाना आशिक़ ३ अनाम शौक़ और मस्ता का स्वच्छन्द साहस ४ व्याकुलता में सान्त्वना ५ मन की तपन ६ माने का साम्य ७ मग़फ़िरत[?] शान्ति ८ मान मक्ति।

खमोशी मे निहा, खूंगश्ता[1] लाखों आरजूएं हैं
चरागे-मुर्दा[2] हूं, मैं बेजुबां, गोरे-गरीबां का[3]

दोस्त गमख्वारी मे मेरी, सइ फरमायेंगे क्या
ज़ख्म के भरने तलक, नाखुन न बढ़ जायेंगे क्या

हज़रते-नासेह गर आयें, दीद-ओ-दिल फर्शे-राह
कोई मुझको यह तो समझा दो, कि समझायेंगे क्या

तेरे वादे पर जिये हम, तो यह जान, झूट जाना
कि खुशी से मर न जाते, अगर एतिबार होता

ये मसाइले-तसव्वुफ[4], यह तिरा बयान, 'गालिब'
तुझे हम वली समझते, जो न बादाख्वार[5] होता

बन्दगी मे भी, वो आज़ाद-ओ-खुदबीं[6] हैं, कि हम
उल्टे फिर आये, दरे-काबा अगर वा[7] न हुआ

हुई मुद्दत, कि 'गालिब' मर गया, पर याद आता है
वो हर इक बात पर कहना, कि यूं होता, तो क्या होता

रेख्ते[8] के तुम्हीं उस्ताद नही हो, 'गालिब'
कहते हैं, अगले ज़माने मे कोई 'मीर' भी था

ज़िक्र उस परीवश[9] का, और फिर बयां[10] अपना
बन गया रकीब आखिर, था जो राज़दां अपना

मंज़र[11] इक बलन्दी पर, और हम बना सकते
अर्श[12] से इधर होता, काश कि मकां अपना

---

१ अपूर्ण, २ बुझा दिया, ३ गरीब की कब्र, ४ तसव्वुफ (वेदान्त) क
५ शराबी, ६ स्वदर्शी और स्वच्छन्द, ७ खुला हुआ, ८ उर्दू शायरी, ९ अप्स
१०. वर्णन शैली, ११ सैरगाह, १२ आकाश का उच्चतम स्थल, ऐश्वरीय

हम कहा के दाना थे किस हुनर म यक्ता थे
व सबब हुआ गालिब दुश्मन आसमा अपना

पूछते हैं वो कि गालिब कौन है
कोई बतलाओ कि हम बतलाय क्या

गम बुझनी है ता उसम से धुआ उठता है
गोल ए दश्त सियह पाश[1] हुआ मरे बाद

कौन होता है हरीफे मै-ए मद अफगने इश्क[2]
है मुकरर लबे साकी प सला[3] मरे बाद

कहते हैं जब रही न मुझे ताकते सुखन[4]
जानू किसी के दिल की मैं क्याकर कह बिगर

गर तुझ को है यकीने इजाबत[5] दुआ न माग
यानी बिगरे यक दिल व मुद्दआ[6] न माग

आता है दाग हसरते दिल का शुमार याद
मुझसे मेरे गुनह का हिसाब ऐ खुदा न माग

तू वाम[7] बख्ते खुफ्ता[8] से यक ख्वावे खुश[9], वले[10]
गालिब यह खौफ है कि कहा से अदा करू

अपने प कर रहा हू कयास अहले-दहर[11] का
समझा हू दिलपज़ीर[12] मता ए हुनर[13] को मैं

आ रब[14] जमाना मुझको मिटाता है किसलिये
लौहे जहा[15] प हर्फ मुकरर[15] नही हू मैं

१ मातमी (काले) कपड़े पहन २ मर्दों को चित्त करने वाली सराब प्रेम मन्दिर के मकरबिन ३ आवाहन निमंत्रण ४ वाक्‌शक्ति ५ प्रायना स्वीकृति का विश्वास ६ प्रार्थना विरहित हृदय ७ उधार ८ सुप्त भाग्य ९ मीठ स्वप्न १ लेकिन ११ दुनियामन ४१२ कला सम्पत्ति १३ हे भगवान १४ ससार रूपी पष्ठ १५ दुबारा लिखा गया अक्षर।

दिल ही तो है, न सगो-खिश्त[1] दर्द से भर न आये क्यो
रोयेंगे हम हजार वार, कोई हमे सताये क्यो

दैर नही, हरम नही, दर नही, आस्तां नही
बैठे है रहगुजर[2] प हम, कोई हमे उठाये क्यो

हां वो गुरूर-इज्जो नाज़[3] या यह हिजावे-पासे-वज्अ[4]
राह मे हम मिले कहा, वज्म मे वो वुलाये क्यो

हम भी तस्लीम की खू[5] डालेगे
वे नियाज़ी तिरी आदत ही सही

नसिय-ओ-नक्दे-दो आलम[6] की हकीकत मालूम
ले लिया मुझसे, मिरी हिम्मते-आली[7] ने मुझे

तुमको भी हम दिखाये, कि मजनू ने क्या किया
फुर्सत कशाकशे - गमे - पिन्हा[8] से गर मिले

हो चुकीं, 'गालिब', वलायें सब तमाम
एक मर्गे - नागहानी[9] और है

जिन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुजरी, 'गालिब'
हम भी क्या याद करेंगे, कि खुदा रखते थे

रखता फिरू हू खिरक-ओ-सज्जादा[10] रहने-मै[11]
मुद्दत हुई है, दावते-आवो-हवा[12] किये

---

१ ईंट-पत्थर, २ रास्ता, ३ हाव-भाव का गर्व, शान और नाज़ का गुरूर, ४ रख-रखाव का ध्यान, ५ आदत, ६ दोनो लोको का उधार और नकद, ७ महान् साहस, ८ आन्तरिक दुखो की ऐंचातानी, ९ आकस्मिक मृत्यु, १० कन्था, गुदडी और नमाज़ पढने का वस्त्र या आसन (जानमाज़), ११ शराव के लिए गिरवी, १२ वसन्त ऋतु की दावत।

हम कहाँ के दाना थे किस हुनर में यकता थे
बे सबब हुआ गालिब, दुश्मन आसमाँ अपना

पूछते हैं वो कि गालिब कौन है
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या

शम्म बुझती है तो उसमें से धुआँ उठता है
शोल ए इश्क सियह पोश[1] हुआ मेरे बाद

कौन होता है हरीफ़े म-ए मर्द अफगने इश्क[2]
है मुकर्रर लबे साक़ी प सला[3] मेरे बाद

कहते हैं जब रही न मुझे ताक़ते सुखन[4]
जानूँ किसी के दिल की मैं क्योंकर कहे बिगर

गर तुझ को है यकीने इजाबत[5] दुआ न माँग
यानी बिग़ैरे यक दिले बे मुद्दआ[6] न माँग

आता है दागे-हसरते दिल का शुमार याद
मुझसे मेरे गुनह का हिसाब, ऐ खुदा न माँग

दे वाम[7] बख्ते-खुफ्ता[8] से यक ख्वाबे-खुश[9] वले[10]
गालिब यह खौफ है कि कहाँ से अदा करूँ

अपने प कर रहा हूँ क़यास अहले-दहर का
समझा हूँ दिलपज़ीर[11] मताए हुनर[12] को मैं

या रब[13] ज़माना मुझको मिटाता है किस लिये
लौहे जहाँ[14] प हर्फ़े मुकर्रर[15] नहीं हूँ मैं

---

१ मातमी (काला) कपड़े पहन २ मनों को विस करने वाला शराब प्रेम मन्दिरा के मर्मविद ३ आश्वासन निमन्त्रण ४ वाक्शक्ति ५ प्रार्थना स्वीकृति का विश्वास ६ अपना विरहित हृदय ७ उधार ८ मन्द भाग्य [illegible] ९ [illegible] १० लेकिन ११ [illegible] १२ कला सम्पत्ति १३ हे भगवान १४ संसार रूपी पृष्ठ १५ दुबारा लिखा गया अक्षर।

दिल ही तो है, न संगो-ख़िश्त[1] दर्द से भर न आये क्यों
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमे सताये क्यों

दैर नही, हरम नही, दर नही, आस्ता नही
बैठे है रहगुज़र[2] प हम, कोई हमे उठाये क्यो

वां वो गुरूर-इज्ज़ो-नाज़[3] यां यह हिजाबे-पासे-वज़्अ[4]
राह मे हम मिले कहा, बज़्म मे वो बुलाये क्यों

हम भी तस्लीम की ख़ू[5] डालेंगे
बे नियाज़ी तिरी आदत ही सही

नसिय-ओ-नक्दे-दो आलम[6] की हकीकत मालूम
ले लिया मुझसे, मिरी हिम्मते-आली[7] ने मुझे

तुमको भी हम दिखाये, कि मजनू ने क्या किया
फुर्सत कशाकशे-गमे-पिन्हा[8] से गर मिले

हो चुकी, 'गालिब', बलायें सब तमाम
एक मर्गे-नागहानी[9] और है

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल मे गुज़री, 'गालिब'
हम भी क्या याद करेंगे, कि ख़ुदा रखते थे

रखता फिरू हू ख़िरक-ओ-सज्जादा[10] रहने-मै[11]
मुद्दत हुई है, दावते-आबो-हवा[12] किये

---

१ ईंट-पत्थर, २ रास्ता, ३ हाव-भाव का गर्व, शान और नाज का गुरूर, ४ रख-रखाव का ध्यान, ५ आदत, ६ दोनों लोकों का उधार और नक़द, ७ महान् साहस, ८ आन्तरिक दुःखों की ऐंचातानी, ९ आकस्मिक मृत्यु, १० कन्था, गुदड़ी और नमाज़ पढ़ने का वस्त्र या आसन (जानमाज), ११ शराब के लिए गिरवी, १२ वसन्त ऋतु की दावत।

होगा कोई ऐसा भी कि 'ग़ालिब' को न जाने
शाइर तो वो अच्छा है प बदनाम बहुत है

बहार

फिर इस अन्दाज़ से बहार आई
कि हुए मेह्र-ओ-मह[१] तमाशाई

देखो ऐ साकिनाने ख़ित्त-ए-ख़ाक[२]
इसको कहते हैं आलम आराई[३]

कि ज़मीं हो गई है सर ता सर[४]
रूकशे सतहे चर्ख़-मीनाई[५]

सब्ज़े को जब कहीं जगह न मिली
बन गया रू-ए-आब पर काई

सब्ज़ो गुल के देखने के लिए
चश्मे नरगिस को दी है बीनाई[६]

है हवा में शराब की तासीर
बादा नोशी है बाद पैमाई[८]

१ चन्द्र और सूर्य २ धरती के वासियो ३ विश्व शृंगार ४ एक सिरे से दूसरे सिरे तक ५ नील नभ का प्रतिबिम्ब ६ दृष्टि ७ मदिरापान ८ व्यर्थ।

मिर्ज़ा गालिब

वसीयत

ताजा वारिदाने-बिसाते-हवा-ए-दिल[1]
ज़िन्हार[2], अगर तुम्हे हवसे-नाओ-नोश[3] है

देखो मुझे, जो दीद-ए-इब्रत निगाह[4] हो
मेरी सुनो, जो गोशे-नसीहत नियोश[5] है

साकी, बजल्वा दुश्मने - ईमानो - आगही[6]
मुतरिब[7], बनग्मा, रहजने-तमकीनो-होश[8] है

या शब को देखते थे, कि हर गोश-ए-बिसात[9]
दामाने - बागबानो - कफे - गुलफरोश[10] है

लुत्फे-खिरामे-साकी-ओ-जौके सदा-ए-चग[11]
यह जन्नते-निगाह, वो फिरदोसे-गोश[12] है

या सुब्ह दम जो देखिये आकर, तो बज्म मे
न वो सुरूरो-सोज़[13], न जोशो-खरोश है

दागे-फिराके-सोहबते-शब[14] की जली हुई
इक शम्अ रह गई है, सो वो भी खमोश है

आते हैं गैब[15] से, ये मजामी-खयाल मे
'गालिब', सरारे-खामा[16] नवा-ए-सरोश[17]

○

१ रगरेलिया मनाने का नया शौक रखने वालो, २ सावधान, ३ राग-रग की वासना, ४ पराये अनुभव मे शिक्षा-ग्रहण करने वाली आख, ५ सदुपदेश सुनने वाले कान, ६ धर्म और ज्ञान का हरण करने वाला, ७ सगीतकार, ८ प्रतिष्ठा और बुद्धि का लुटेरा, ९ फर्श का एक-एक कोना, १० माली की डाली और फूल बेचने वाले की हथेली, ११ साकी की मथर गति का सौन्दर्य और चग की मधुर ध्वनि का आनन्द, १२ कानो मे बसा हुआ स्वर्ग, १३ खुशी और गर्मी, १४ रात की महफिल के विरह का दाग, १५ अदृश्य लोक, १६ कलम की आवाज, १७ देवदूत की वाणी ।

यह ज़िद, कि आज न आये और आये बिन न रहे
कजा[1] से शिकवा हमे किस कदर है, क्या कहिये

यह फितना, आदमी की खाना वीरानी[2] को क्या कम है
हुए तुम दोस्त जिसके, दुश्मन उसका आस्मा क्यो हो

शर - ओ - आईन[3] पर मदार[4] सही
ऐसे कातिल का क्या करे कोई

बात पर वा ज़बान कटती है
वो कहे और सुना करे कोई

कहा मैखाने का दरवाजा, 'गालिब' और कहां वाइज़[5]
पर इतना जानते है, कल वो जाता था, कि हम निकले

'गालिब', बुरा न मान, जो वाइज बुरा कहे
ऐसा भी कोई है, कि सब अच्छा कहे जिसे

कहते हुए साकी से हया आती है, वरना
है यो कि मुझे, दुर्द-तहे-जाम[6] बहुत है

मुझको दयारे-गैर[7] मे मारा, वतन से दूर
रखली मिरे खुदा ने, मिरी बेकसी की शर्म

---

१. मृत्यु, २ घर उजाड देने, ३ विधि के विधान और राज्य-नियम, ४ आधार, ५ धर्मोपदेशक, ६ मधुपात्र मे मदिरा की तलछट, ७ विदेश ।

राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

प्रधान सम्पादक :

डॉ० बालकृष्ण केसकर

सम्पादक :

ो० के० स्वामीनाथन् श्री एम० वी० देसाई

आगामी पुस्तकों की सूची

१	रामानुजाचार्य	श्री आर० पारथसार्थी
२	मध्वाचार्य	डॉ वी० एन० के० शर्मा
३	नरसिंह मेहता	श्री के० के० शास्त्री
४	नामदेव	श्री एल० सी० जोग
५	स्वामी विवेकानन्द	श्री ए० के० मजूमदार
६	स्वामी रामदास	प्रो० एम० जी० देशमुख
७	स्वामी रामतीर्थ	श्री डी० आर० सूद
८.	स्वामी दयानन्द	डॉ वीरेन्द्र कुमार सिंह
९	चैतन्य	श्री दिलीप कुमार मुकर्जी
१०	बाण	डॉ० लल्लनजी गोपाल
११	हेमचन्द्राचार्य	श्री मधुसूदन मोदी
१२.	सूरदास	डॉ० बृजेश्वर वर्मा

१३ सिद्धराज	श्री चिनूभाई ज० नायक
१४ हब्बा खातून	श्री एस० एन० चावला
१५ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	डा० राजबली पाण्डेय
१६ पुलकेसी द्वितीय	श्री जयप्रकाश सिंह
१७ कनिष्क	डा० ए० के० नारायण
१८ भोज परमार	श्री सी० के० त्रिपाठी
१९ पृथ्वीराज चौहान	डा० विद्याप्रकाश
२० सवाई जयसिंह	श्री आर० एस० भट्ट
२१ महाराजा सयाजी गायकवाड़	प्रो० एच० एच० कामदार
२२ मौलाना अबुलकलाम आजाद	श्री मलिक राम
२३ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	श्री एस० के० बोस
२४ पंडित मदनमोहन मालवीय	श्री सीताचरण दीक्षित
२५ जी० जी० अगरकर	श्री जी० पी० प्रधान
२६ पुरन्दरदास	श्री वी० सीतारमय्या
२७ तानसेन	ठाकुर जयदेवसिंह
२८ रामानुज	डा० वी० डी० शर्मा
२९ जे० सी० बोस	श्री ज्ञानचन्द्र भट्टाचार्य

'राष्ट्रीय जीवन-चरित' माला

प्रकाशित पुस्तकें

	रु०
१. गुरु गोविन्दसिंह—डॉ० गोपालसिंह	२.००
२ अहिल्याबाई—श्री हीरालाल शर्मा	१.७५
३. महाराणा प्रताप—श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट	१.७५
४. कबीर—डॉ० पारसनाथ तिवारी	२ ००
५ रानी लक्ष्मीबाई—श्री वृन्दावनलाल वर्मा	२ ००
६. समुद्रगुप्त—डॉ० लल्लनजी गोपाल	१.२५
७ चन्द्रगुप्त मौर्य—डॉ० लल्लनजी गोपाल	१.२५
८. पंडित विष्णु दिगम्बर—श्री वी० आर० आठवले। अनु० हरि दामोदर धुलेकर	१ २५
९ पंडित भातखण्डे—डॉ० श्रीकृष्ण नारायण रतनजनकर। अनु० अमिताभ मिश्र	१ २५
१०. त्यागराज—प्रो०पी० साम्बमूर्ति। अनु० आनन्दीलाल तिवारी	१.७५
११. रहीम—डॉ० समर बहादुर सिंह। अनु० सुमंगल प्रकाश	१ ७५
१२. गुरु नानक—डॉ० गोपाल सिंह। अनु० महीप सिंह	२ ००
१३. हर्ष—श्री वी० डी० गंगल। अनु० सुमंगल प्रकाश	१.५०
१४. सुब्रह्मण्य भारती (अंग्रेजी)*—डॉ० (श्रीमती) प्रेमा नन्दकुमार	२.२५

१५ शङ्करदेव (अंग्रेज़ी)*—प्रा० महेश्वर नियोग २

१६ काज़ी नज़रुल इस्लाम (अंग्रेज़ी)* श्री बसुधा चक्रवर्ती

१७ शंकराचार्य—डॉ० टी० एम० पी० महादेवन।
अनु० सुमंगल प्रकाश १.७५

१८ रणजीतसिंह (अंग्रेज़ी)*—श्री डी० आर० सूद २.००

१९ नाना फड़नवीस (अंग्रेज़ी)*—प्रा० वाई० एन० देवधर १.७५

२० आर० जी० भण्डारकर (अंग्रेज़ी)*—डॉ० एच० ए० फड़के १.७५

२१ हरिनारायण आप्टे (अंग्रेज़ी)*—डॉ० एम० ए० करन्दीकर १.७५

२२ अमीर खुसरो (अंग्रेज़ी)*—श्री सय्यद गुलाम समनानी १.७५

२३ मुत्तुस्वामी दीक्षितर*—न्यायमूर्ति टी० एल० वेंकटराम अय्यर २.००

२४ मिर्ज़ा ग़ालिब*—श्री मालिक राम २.००